दो सौ बयालीसवाँ अध्याय

रुद्र उवाच

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णं महामनुम् । जजाप गोमतीतीरे नैमिषे विमले शुभे ॥१॥
तेन वर्षसहस्रेण पूजितः कमलापतिः । मत्तो वरं वृणीष्वेति तं प्राह भगवान्हरिः ॥२॥

मनुरुवाच

पुत्रत्वं भज देवेश ! त्रीणि जन्मानिचाच्युत ! ।
त्वां पुत्रलालसत्वेन भजामि पुरुषोत्तमम् ॥३॥

रुद्र उवाच

इत्युक्तस्तेन लक्ष्मीशः प्रोवाच सुमहागिरा ॥४॥

विष्णुरुवाच

भविष्यति नृपश्रेष्ठ ! यत्ते मनसि काङ्क्षितम् ।
ममैव च महाप्रीतिस्तव पुत्रत्वहेतवे ॥५॥
स्थितिप्रयोजने काले तत्र तत्र नृपोत्तम ! । त्वयि जातेत्वहमपि जातोऽस्मि तवसुव्रत ! ॥६॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि तवाऽनघ ! ॥७॥

रुद्र उवाच

एवं दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवाऽन्तर्दधेहरिः । अस्याभूत्प्रथमं जन्म मनोः स्वायम्भुवस्यच ॥८॥
रघूणामन्वयेपूर्वं राजा दशरथो ह्यभूत् । द्वितीयो वसुदेवोऽभूद्वृष्णीनामन्वये विभुः ॥९॥
कलेर्दिव्यसहस्राब्दप्रमाणस्यान्त्यपादयोः । शम्भलग्रामके मुख्ये ब्राह्मणः सञ्जनिष्यते ॥१०॥

श्रीरामावतार के वर्णन के प्रसङ्ग में स्वायम्भुव मनु द्वारा तपस्या किया जाना, त्रेतायुग में महाराजा दशयारथ के गृह में श्रीराम का अवतार तथा श्रीराम के वनवास का वर्णन

रुद्र ने कहा— स्वयम्भुव मनु पहले द्वादशाक्षर महामन्त्र का गोमती के विमल तट पर नैमिषारण्य में जप किए ॥१॥ उन्होंने एक हजार वर्ष पर्यन्त श्रीलक्ष्मीपति की पूजा की उसके पश्चात् श्रीहरि ने उनसे कहा कि तुम मुझसे वरदान माँगो ॥२॥ **मनु ने कहा—** हे अच्युत ! मेरे वंश में तीन जन्मों में पुत्रत्व को आप प्राप्त करें । हे पुरुषोत्तम ! आपको पुत्र बनाने की कामना से मैंने आपका भजन किया है ॥३॥ **रुद्र ने कहा—** उनके द्वारा इस तरह से कहे जाने पर लक्ष्मीपति ने अपनी महान् वाणी से कहा ॥४॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आपने अपने मन में जो चाहा है, वह होगा मुझको भी आपका पुत्र होने में महान् प्रेम है॥५॥ हे नृपोत्तम ! स्थिति तथा प्रयोजन के समय मैं विभिन्न स्थानों पर आपके उत्पन्न होने पर मैं भी आपके पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ हूँ ॥६॥ हे अनघ ! साधुजनों की रक्षा करने के लिए और पापियों का विनाश करने के लिए सब धर्म की स्थापना करने के लिए आपका पुत्र होता हूँ ॥७॥ **रुद्र ने कहा—** इस प्रकार से उस राजा को वरदान देकर श्रीहरि वहीं पर अन्तर्धान हो गये । इनका प्रथम जन्म स्वयाम्भु मनु के रूप में हुआ ॥८॥ वे रघुवंशियों के वंश में पूर्वकाल में राजा दशरथ हुए दूसरे में वृष्णि वंश में वसुदेव

ततो मुक्तिर्भवेत्तस्य मनोर्जन्मत्रयान्तरे। राघवः प्रथमं जज्ञे कृष्णस्तु तदनन्तरम्॥११॥
कल्किरूपी हरिः पश्चाद्ब्राह्मणस्य जनिष्यति ।
तस्य पत्नी महाभागा सुशीला नाम भामिनी ॥१२॥
कौसल्या समभूत्पत्नी राज्ञो दशरथस्य हि। यदुवंश्यस्य सवाऽथ देवकी नामविश्रुता ॥१३॥
हरिव्रतस्य विप्रस्य भार्या देवप्रभापुनः। एवंमातृत्वमापन्ना त्रीणि जन्मानि शार्ङ्गिणः ॥१४॥
पूर्वं रामस्य चरितं वक्ष्यामि तव सुव्रते !। यस्य स्मरणमात्रेण विमुक्तिः पापिनामपि॥१५॥
हिरण्यकहरण्याक्षौ द्वितीयं जन्मसंश्रितौ। कुम्भकर्णदशग्रीवावजायेतां महाबलौ॥१६॥
पुलस्त्यस्य सुतो विप्रो विश्रवानाम धार्मिकः ।
तस्य पत्नी विशालाक्षी राक्षसेन्द्रसुताऽनघे ! ॥१७॥
सुकेशितनया सा स्यात्सुमालेर्दानवस्य च । केकसी नाम कन्याऽऽसीत्तस्य भार्या दृढव्रता॥१८॥
कामोद्रिक्तातु सा देवी सन्ध्याकालेमहामुनिम् ।
रमयामास तन्वङ्गी यथेष्टं शुभदर्शना ॥१९॥
तत्कालसम्भवौ गर्भौतस्यां जातौमहाबलौ। रावणःकुम्भकर्णश्च राक्षसौलोकविश्रुतौ ॥२०॥
कन्याशूर्पणखानामजाताऽतिविकृतानना । कस्यचित्त्वथकालस्यतस्यांजातोविभीषणः ॥२१॥
सुशीलो भगवद्भक्तः सत्यवाग्धर्मवाञ्छुचिः। रावणः कुम्भकर्णश्च हिमवत्पर्वतोत्तमे ॥२२॥
महोग्रतपसा मां वै पूजयामासतुर्भृशम्। रावणस्त्वथ दुष्टात्मा स्वशिरःकमलैःशुभैः॥२३॥
पूजयामास मां देवि ! दारुणेनैव कर्मणा । ततस्तमब्रवं स्वभूः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२४॥

हुए॥९॥ एक हजार देवताओं के वर्ष प्रमाण वाले कलि के अन्तिम चरणों में मुख शाम्भल ग्राम में वे ब्राह्मण होयेंगे ॥१०॥ उसके बाद तीन जन्म के बाद में मनु की मुक्ति हो जायेगी । श्रीभगवान् सर्वप्रथम श्रीराम हुए, उसके वाद वे श्रीकृष्ण हुए ॥११॥ श्रीहरि बाद में कल्की के रूप में उत्पन्न होंगे । उनकी पत्नी महाभागा सुशीला नाम वाली होंगी ॥१२॥ राजा दशरथ की पत्नी कौसल्या हुयीं । यदुवंश में उत्पन्न वसुदेवजी की पत्नी वे ही देवकी हुयीं ॥१३॥ वे ही हरिव्रत नामक ब्राह्मण की पत्नी देवप्रभा हुयी इस तरह श्रीभगवान् के तीन जन्मों में ये मातृत्व को प्राप्त कीं ॥१४॥ हे सुव्रते ! मैं सर्वप्रथम श्रीराम का चरित तुम्हे सुनाता हूँ । उनके स्मरण करने मात्र से पापियों की भी मुक्ति हो जाती है ॥१५॥ हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष जो पूर्व जन्म में राक्षस थे वे दोनों महाबलवान् रावण एवं कुम्भकर्ण हुए ॥१६॥ महर्षि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा नाम वाले धार्मिक हुए । उनकी बड़ी-बड़ी आँखों वाली पत्नी राक्षस राज की पुत्री हुयी॥१७॥ सुमाली नामक दानव की पुत्री सुकेशी हुयीं । विश्वश्रवा की दृढव्रता पत्नी कैकसी हुयी ॥१८॥ सायंकाल में कामोद्रिक्त होने के कारण वह सुन्दरी महामुनि के साथ यथेष्ट रूप में रमण की ॥१९॥ उसी समय उत्पन्न गर्भ में महाबलवान् लोक विश्रुत राक्षस रावण और कुम्भकर्ण हुए ॥२०॥ विश्वश्रवा की पुत्री शूर्पणखा थी वह अत्यन्त विकृत मुख वाली थी । कुछ समय के वाद उसके गर्भ से विभीषण पैदा हुए ॥२१॥ वे सुशील, भगवद्भक्त, सत्यवादी, धार्मिक और पावित्र्य पालन करने वाले थे । रावण और कुम्भकर्ण उत्तम हिमवान् पर्वत पर अपनी उग्र तपस्या से मेरी पूजा किए । उसके वाद दुष्ट रावण अपने शिर रूपी कमलों

वरं वृणीष्व मे वत्स मनसि वर्त्तते। ततः प्रोवाच दुष्टात्मा देवदानवरक्षसाम् ॥२५॥
अवध्यत्वं प्रदेहीति सर्वलोकजिगीषया। ततोऽहं दत्तवांस्तस्मै राक्षसाय दुरात्मने ॥२६॥
देवदानवयक्षाणामवध्यत्वं वरानने !। राक्षसोऽसौ महावीर्यो वरदानात्तु गर्वितः ॥२७॥
त्रीँ ल्लोकान्पीडयामास देवदानवमानुषान्। तेन सम्बाध्यमानाश्च देवा ब्रह्मपुरोगमाः ॥२८॥
भयार्त्ताः शरणं जग्मुरीश्वरं कमलापतिम्। ज्ञात्वाऽथ वेदनां तेषामभयाय सनातनः ॥
उवाच त्रिदशान्सर्वान्ब्रह्मरुद्रपुरोगमान् ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

राज्ञो दशरस्थस्याहमुत्पत्स्यामिरघोः कुले। हनिष्यामि दुरात्मानं रावणं सहबान्धवम् ॥३०॥
मानुषं वपुरास्थाय हन्मि दैवतकण्टकम्। नन्दिशापाद्भवन्तोऽपि वानरत्वमुपागताः ॥
कुरुध्वं मम साहाय्यं गन्धर्वाप्सरसोत्तमाः ॥३१॥

रुद्र उवाच

इत्युक्ता देवतास्सर्वा देवदेवेन विष्णुना। वानरत्वमुपागम्य जज्ञिरे पृथिवीतले ॥३२॥
भार्गवेण प्रदत्ता तु मही सागरमेखला। दत्ता महर्षिभिः पूर्वं रघूणां सुमहात्मनाम्॥३३॥
वैवस्वतमनोः पुत्रो राज्ञां श्रेष्ठो महाबलः। इक्ष्वाकुरिति विख्यातस्सर्वधर्मविदाम्वरः ॥३४॥
तदन्वये महातेजा राजा दशरथो बली। अजस्य नृपतेः पुत्रः सत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥३५॥
स राजा पृथिवींसर्वां पालयामासवीर्यतः। राज्येषु स्थापयामास सर्वान्पार्थिवसत्तमान्॥३६॥

से ॥२२-२३॥ हे देवि ! अपने दारुण कर्म से मेरी पूजा किया। हे सुभ्रू उसके पश्चात् मैं प्रसन्न होकर उससे कहा ॥२४॥ हे वत्स ! तुम्हारे मन में जो हो उस वरदान को तुम मुझसे माँगो उसके पश्चात् उस दुष्ट ने कहा देवता, दानव और राक्षसों से मुझे अवध्यता प्रदान करें। मैंने उस दुष्ट को देवता, दानव और यक्षों से अवध्यता का वरदान दे दिया। वह सभी लोकों को जीत लेना चाहता था। वह महापराक्रमी राक्षस मेरे वरदान से गर्वित होकर ॥२५-२७॥ देवताओं दानवों और मानवों को पीड़ित किया। उससे बाधित होकर ब्रह्मा आदि देवता ॥२८॥ भयभीत होकर भगवान् कमलापति के शरण में गये। उन देवताओं की वेदना को जानकर उनके अभयत्व के लिए सनातन भगवान् ब्रह्मा रुद्र आदि सभी देवताओं से कहे ॥२९॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— मैं रघुवंश में महाराज दशरथ के पुत्र रूप से उत्पन्न होऊँगा। और दुष्टात्मा रावण का मैं उसके बान्धवों के साथ वध करूँगा ॥३०॥ मैं मानव रूप धारण करके उस देवताओं के शत्रु का वध करूँगा। और नन्दी के शाप से आपलोग भी वानर योनि को प्राप्त करके गन्धर्व अप्सराएँ आदि भी मेरी सहायता करेंगे ॥३१॥ **रुद्र ने कहा**— इस तरह से भगवान् विष्णु के द्वारा कहे जाने पर सभी देवता वानरत्व को प्राप्त करके पृथिवी पर उत्पन्न हुए ॥३२॥ श्रीपरशुरामजी ने पहले समुद्र पर्यन्त पृथिवी को दिया था उस पृथिवी को महर्षियों ने रघुवंशियो को दे दिया था ॥३३॥ महाबलवान् और वैवस्त मनु के पुत्र और राजाओं में श्रेष्ठ, सभी धर्म ज्ञाताओं में श्रेष्ठ इक्ष्वाकु हुए ॥३४॥ उनके वंश में महातेजस्वी और बलवान् राजा दशरथ हुए। वे राजा अज के पुत्र सत्यवक्ता, शीलगुण सम्पन्न और पावित्र्य का पालन करने वाले थे ॥३५॥ वे राजा अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करते थे। उन्होंने राज्यों में श्रेष्ठ

कोसलस्यनृपस्याऽथ पुत्री सर्वाङ्गशोभना। कौसल्या नाम तांकन्यामुपयेमे स पार्थिवः ॥३७॥
मागधस्य नृपस्याऽथ तनया च शुचिस्मिता ।
सुमित्रानाम नाम्ना च द्वितीया तस्य भामिनी ॥३८॥
तृतीया केकयस्याऽथ नृपतेर्दुहिता तथा। भार्याऽभूत्पद्मपत्राक्षी कैकेयी नाम नामतः ॥३९॥
ताभिः स्म राजा भार्याभिस्तिसृभिर्धर्मसंयुतः ।
रमयामास काकुत्स्थः पृथिवीं चाऽनुपालयन् ॥४०॥
अयोध्यानामनगरी सरयूतीरसंस्थिता। सर्वरत्नसुसम्पूर्णा धनधान्यसमाकुला ॥४१॥
प्राकारगोपुरैर्जुष्टा हेमप्रकारसङ्कुला। उत्तमैर्गर्गितुरगैर्महेन्द्रस्ययथापुरी ॥४२॥
तस्यां राजा स धर्मात्मा उवास मुनिसत्तमैः ।
पुरोहितेन विप्रेण वसिष्ठेन महात्मना ॥४३॥
राज्यंच कारयामास सर्वं निहतकण्टकम्। यस्मादुत्पत्स्यते तस्यां भगवान्पुरुषोत्तमः॥४४॥
तस्मात्तुनगरीपुण्या साप्ययोध्येतिकीर्तिता। नगरस्यपरंधाम्नो नामतस्याप्यभूच्छुभे !॥४५॥
यत्राऽऽस्ते भगवान्विष्णुस्तदेव परमं पदम्। तत्र सद्यो भवेन्मोक्षः सर्वकर्मनिकृन्तनः॥४६॥
जाते तत्र महाविष्णौ नराःसर्वेमुदं ययुः । स राजा पृथिवी सर्वां पालयित्वाशुभानने ॥४७॥
अयजद्वैष्णवेष्ट्याच पुत्रार्थी हरिमच्युतम्। तेन सम्पूजितः श्रीशो राज्ञाः सर्वगतोहरिः॥४८॥
वैष्णवेन तु यज्ञेन वरदः प्राह केशवः। तस्मिन्नाविरभूदग्नौ यज्ञरूपो हरिस्तदा ॥४९॥
शुद्धजाम्बूनदप्रख्यः शङ्खचक्रगदाधरः। शुक्लाम्बरधरः श्रीमान्सर्वभूषणभूषितः ॥५०॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्को वनमालाविभूषितः। पद्मपत्रविशालाक्षश्चतुर्बाहुरुदारधीः ॥५१॥

राजाओं को स्थापित किया ॥३६॥ कोसल राज की सर्वाङ्ग सुन्दरी पुत्री कौसल्या थीं राजा ने उनसे विवाह किया ॥३७॥ उसके पश्चात् मगधराज की सुन्दर मुस्कान वाली पुत्री सुमित्रा थी वह उनकी दूसरी पत्नी हुयी॥३८॥ उसके पश्चात् उनकी तीसरी पत्नी केकय राज की कमलनयनी पुत्री हुयी और उसका नाम कैकेयी था ॥३९॥ उन तीनों पत्नियों के साथ काकुत्स्थ वंश में उत्पन्न राजा दशरथ धर्मानुसार रमण किए॥४०॥ सभी रत्नों से परिपूर्ण तथा धन-धान्य से भरी हुयी सरयू नदी के तट पर अयोध्या नाम की नगरी थी ॥४१॥ वह प्राकारों तथा गोपुरों से परिपूर्ण, स्वर्ण प्रकारों से भरी हुयी उत्तम कोटि के हाथियों और घोड़ों से युक्त इन्द्र की नगरी के समान थी ॥४२॥ उस नगरी में वे राजा मुनिश्रेष्ठों तथा पुरोहित महात्मा वसिष्ठ के साथ राज्य करते थे। उनका कोई भी शत्रु नहीं था चूकि श्रीभगवान् उस नगरी में जन्म लेंगे इसीलिए वह पवित्र नगरी भी अयोध्या कहलाती थी। उस नगर के अपर धाम होने के कारण हे शुभे! उसका अयोध्या नाम हुआ जहाँ पर भगवान् विष्णु हैं वह परम धाम है। वहाँ पर सभी कर्मों को विनष्ट करने वाला मोक्ष शीघ्र ही हो जाता है ॥४३-४६॥ वहाँपर मद्यविष्णु के उत्पन्न होने पर सभी लोग प्रसन्न हो गये। वे राजा सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करके ॥४७॥ उन्होंने श्रीहरि की आराधना पुत्रेष्टि याग से की। उन राजा के द्वारा पूजित होकर सर्वत्र व्याप्त श्रीहरि ॥४८॥ वैष्णव यज्ञ के द्वारा प्रसन्न होकर वरदान देने वाले यज्ञ रूप से श्रीभगवान् प्रकट हो गये ॥४९॥ वे शुद्ध सुवर्ण के समाने शङ्ख, चक्र और गदा धारण

सख्याङ्कस्थश्रिया सार्द्धमाविरासीद्रमेश्वरः। वरदोऽस्मीति तं प्राह राजानं भक्तवत्सलः॥५२॥
तं दृष्ट्वा सर्वलोकेशं राजा हर्षसमाकुलः। ववन्दे भार्यया सार्द्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥५३॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा। पुत्रत्वं मे भजेत्याह देवदेवं जनार्दनम् ॥
ततः प्रसन्नो भगवान्प्राह राजानमच्युतः ॥५४॥

विष्णुरुवाच

उत्पत्स्येऽहं नृपश्रेष्ठ ! देवलोकहिताय वै। परित्राणाय साधूनां राक्षसानां वधाय च ॥
मुक्तिं प्रदातुं लोकानां धर्मसंस्थापनाय च ॥५५॥

महादेव उवाच

इत्युक्त्वापायसं दिव्यं हेमपात्रस्थितंशृतम्। लक्ष्म्याहस्मतस्थितं शुभ्रंपार्थिवायददौहरिः ॥५६॥

विष्णुरुवाच

इदं वै पायसं राजन्पत्नीभ्यस्तव सुव्रत !। देहि ते तनयास्तासु उत्पस्यन्ते मदंशजाः ॥५७॥

महादेव उवाच

इत्युक्त्वा मुनिभिःसर्वैः स्तूयमानोजनार्दनः। स्वात्मानंदर्शयित्वाऽथतथैवान्तरधीयत ॥५८॥
स राजा तत्र दृष्ट्वा च पत्नीं ज्येष्ठां कनीयसीम् ।
विभज्य पायसं दिव्यं प्रददौ सुसमाहितः ॥५९॥
एतस्मिन्नन्तरे पत्नी सुमित्रा तस्य मध्यमा। तत्समीपं प्रयातासापुत्रकामा सुलोचना॥६०॥
तां दृष्ट्वा तत्र कौसल्या कैकेयी च सुमध्यमा ।
अर्द्धमर्द्धं प्रददतुस्ते तस्यैपायसं स्वकम् ॥६१॥

किए थे। श्वेत वस्त्र धारण किए हुए वे सभी भूषणों से भूषित थे ॥५०॥ उनका हृदय श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभ मणि से सुशोभित था और वे वनमाला धारण किए हुए थे। उनके कमल दल के समान बड़े-बड़े नेत्र थे और उनकी चार भुजाएँ थीं श्रीभगवान् अपनी पत्नी लक्ष्मीजी के साथ आविर्भूत हुए थे। उन भक्तवत्सल ने राजा दशरथ से कहा मैं वरदान देना चाहता हूँ ॥५१-५२॥ सभी लोकों के स्वामी श्रीभगवान् को देखकर अत्यन्त हर्षित होकर वे अपनी पत्नी के साथ उनकी वन्दना प्रसन्न अन्तःकरण से किए ॥५३॥ वे हाथ जोड़कर और झुककर कहे आप मेरे पुत्र हो जायँ। उसके बाद प्रसन्न होकर भगवान् अच्युत राजा से कहे ॥५४॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— हे नृपश्रेष्ठ ! मैं देवताओं का कल्याण करने के लिए, सज्जनों की रक्षा करने के लिए, और राक्षसों का वध करने के लिए, लोकों को मुक्ति प्रदान करने के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए उत्पन्न होऊँगा ॥५५॥ **महादेवजी ने कहा**— यह कहकर पके हुए सुवर्ण पात्र में स्थित दिव्य पायस जो लक्ष्मीजी के हाथ में विद्यमान था उस शुभ पायस को राजा को प्रदान किए॥५६॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— राजन् आप इस पायस को अपनी पत्नियों को दे दें इससे मेरे अंश से आपके पुत्र होंगे ॥५७॥ **शिवजी ने कहा**— यह कहकर मुनियों से स्तुति किए जाते हुए भगवान् जनार्दन, दर्शन देकर उसी तरह से अन्तर्धान हो गये ॥५८॥ वे राजा वहाँ पर बड़ी पत्नी तथा छोटी पत्नी को सावधानी पूर्वक बाँट करके उस दिव्य पायस को प्रदान किए ॥५९॥ उसी समय राजा की मध्यमा पत्नी सुन्दर नेत्रों वाली सुमित्रा पुत्र की कामना से राजा के पास आयी ॥६०॥ उनको देखकर सुन्दरी

तत्राश्यपायसं दिव्यं राजपत्न्यः सुमध्यमाः । सम्पन्नगर्भाः सर्वास्ताविरेजुः शुभ्रवर्चसः ॥६२॥
तासां स्वप्नेषु देवेशः पीतवासा जनार्दनः । शङ्खचक्रगदापाणिराविर्भूतस्तदा हरिः ॥६३॥
अथ काले मनोरम्ये मधुमासि शुचिस्मिते । शुक्ले नवम्यां विमले नक्षत्रेऽदितिदैवते ॥६४॥
मध्याह्नसमये लग्ने सर्वग्रहशुभान्विते । कौसल्या जनयामास पुत्रं लोकेश्वरं हरिम् ॥६५॥
इन्दीवरदलश्यामं कोटिकन्दर्पसन्निभम् । पद्मपत्रविशालाक्षं सर्वाभरणशोभितम् ॥६६॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं सर्वाभरणभूषितम् । उद्यद्दिनकरप्रख्यकुण्डलाभ्यां विराजितम्॥६७॥
अनेकसूर्यसङ्काशं तेजसा महतावृतम् । परेशस्य तनो रम्यं दीपादुत्पन्नदीपवत् ॥६८॥
ईशानं सर्वलोकानां योगिध्येयं सनातनम् । सर्वोपनिषदामर्थमनन्तं परमेश्वरम् ॥६९॥
जगत्सर्गस्थितिलये हेतुभूतमनामयम् । शरण्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमयं विभुम् ॥७०॥
समुत्पन्ने जगन्नाथे देवदुन्दुभयो दिवि । विनेदुः पुष्पवर्षाणि ववृषुः सुरसत्तमाः ॥७१॥
प्रजापतिमुखा देवा विमानस्था नभस्तले । तुष्टुवुर्मुनिभिः सार्द्धं हर्षपूर्णाङ्गविह्वलाः ॥७२॥
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः । ववुःपुण्याःशिवा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥७३॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता विमलाश्चदिशो दश ।
ततस्स राजा हर्षेण पुत्रं दृष्ट्वा सनातनम् ॥७४॥
पुरोधसा वसिष्ठेन जातकर्मतदाऽकरोत् । नाम चाऽस्मैददौरम्यं वसिष्ठो भगवांस्तदा ॥७५॥

कौसल्या और कैकेयी अपना आधा-आधा पायस उनको प्रदान कीं ॥६१॥ उस दिव्य पायस को खाकर सुन्दरी सभी रानियाँ गर्भवती होकर सुशोभित हुयीं ॥६२॥ उन सबों को स्वप्न में श्रीभगवान् पीताम्बर धारण किए हुए शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए दर्शन दिए ॥६३॥ उसके पश्चात् मनोरम चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन अदिति दैवत नक्षत्र में ॥६४॥ दोपहर की बेला में कर्क लग्न में जब सभी ग्रह कल्याणकारी हो गये थे श्रीकौसल्याजी ने अपने पुत्र लोकेश्वर श्रीहरि को जन्म दिया ॥६५॥ वे नीलकमल दल के समान श्यामवर्ण के, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, कमल दल के समान बड़े-बड़े नेत्र वाले, सभी आभूषणों से भूषित थे । उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभ मणि से सुशोभित था। वे उगते हुए दो सूर्यों के समान दो कुण्डलों से सुशोभित थे ॥६६-६७॥ वे अनेक सूर्यों के समान तेज से परिपूर्ण थे । श्रीभगवान् का शरीर दीपक से उत्पन्न दीपक के समान मनोहर था ॥६८॥ वे सभी लोकों के स्वामी के द्वारा ध्यान करने योग्य, सनातन सभी उपनिषदों के अर्थस्वरूप, अनन्त, परमेश्वर ॥६९॥ अनामय तथा जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के कारण स्वरूप, सभी भूतों के रक्षक, सर्वभूतमय व्यापक॥७०॥ श्रीहरि के उत्पन्न हो जाने पर देवताओं ने दुन्दुभि बजायी और पुष्पों की वर्षा की ॥७१॥ ब्रह्मा आदि देवता, आकाश में विमान पर बैठकर मुनियों के साथ श्रीभगवान् की स्तुति किए । उस समय उनके अङ्ग हर्ष से परिपूर्ण थे ॥७२॥ गन्धर्वों के स्वामियों ने गीत गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया । मङ्गलमय वायु बहने लगी और सूर्य सुन्दर प्रभा से युक्त हो गये ॥७३॥ सभी अग्नियाँ जल गयीं और सभी दिशाएँ शान्त और स्वच्छ हो गयीं । उसके पश्चात् राजा हर्ष पूर्वक अपने सनातन पुत्र को देखकर॥७४॥ अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठ से जातकर्म कराये । उस समय महर्षि वसिष्ठ ने इनका मनोहर नाम राम

श्रियः कमलवासिन्या रमणोऽयंमहान्प्रभुः । तस्माच्छ्रीरामइत्यस्यनामसिद्धंपुरातनम् ॥७६॥
सहस्रनाम्नां श्रीशस्य तुल्यं मुक्तिप्रदं नृणाम्। विष्णुमासे समुत्पन्नो विष्णुरित्यभिधीयते ॥७७॥
एवंनामाऽस्यदत्त्वाऽथ वसिष्ठो भगवानृषिः। परिणीयनमस्कृत्यस्तुत्वास्तुतिभिरेवच ॥७८॥
संकीर्त्यनामसाहस्रं मङ्गलार्थं महात्मनः। विनिर्ययौमहातेजास्तस्मात्पुण्यतमाद्गृहात् ॥७९॥
राजाऽथ विप्रमुख्येभ्यो ददौ बहुधनं मुदा । गवामयुतदानं च कारयामास धर्मतः ॥८०॥
ग्रामाणां शतसाहस्रं ददौ रघुकुलोत्तमः । वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैरसङ्ख्येयैर्धनैरपि ॥८१॥
विष्णोस्संतुष्टये तत्र तर्पयामास भूसुरान्। कौसल्याचसुतं दृष्ट्वा रामं राजीवलोचनम्॥८२॥
फुल्लहस्तारविन्दाभं पद्महस्ताम्बुजान्वितम्। तस्य श्रीपादकमले पद्माब्जे च वरानने ! ॥८३॥
शङ्खचक्रगदापद्मध्वजवज्रादिचिह्निते । दृष्ट्वा वक्षसि श्रीवत्सं कौस्तुभं वनमालया ॥८४॥
तस्याऽङ्गे सा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् । स्मितवक्त्रे विशालाक्षी भुवनानि चतुर्दश॥८५॥
निःश्वासे तस्य वेदांश्च सेतिहासान्महात्मनः । द्वीपानब्धीन्गिरींस्तस्यजघनेवरवर्णिनि ॥८६॥

नाभ्यां ब्रह्मशिवौ तस्य कर्णयोश्च दिशःशुभाः ।
नेत्रयोर्वह्निसूर्यौचघ्राणे वायुं महाजवम् ॥८७॥

सर्वोपनिषदामर्थं दृष्ट्वा तस्य विभूतयः । कृत्स्ना भीता वरारोहा प्रणम्य च पुनःपुनः॥
हर्षाश्रुपूर्णनयना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥८८॥

कौसल्योवाच

धन्याऽस्मि देवदेवेश ! लब्ध्वा त्वां तनयं प्रभो ! ।
प्रसीद मे जगन्नाथ ! पुत्रस्नेहं प्रदर्शय ॥८९॥

रखा ॥७५॥ ये महाप्रभु कमल वासिनी लक्ष्मीजी के पति हैं अतएव इनका प्राचीन नाम श्रीराम होगा॥७६॥ हजारों नाम वाले लक्ष्मीपति के समान ये मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं । ये विष्णु देवताक मास में उत्पन्न हुए हैं अतएव ये विष्णु कहे जाते हैं ॥७७॥ इस प्रकार से इनके नामों को रखकर महर्षि वसिष्ठ, नाम रखने के बाद नमस्कार करके तथा स्तुतियों द्वारा स्तुति करके ॥७८॥ श्रीभगवान् के मङ्गल के लिए विष्णु सहस्र नाम का उच्चारण करके वे महातेजस्वी उस पवित्रतम गृह से निकले ॥७९॥ राजा भी मुख्य ब्राह्मणों को प्रसन्नता पूर्वक बहुत अन्न प्रदान किए । उन्होंने दश हजार गौओं का दान कराया ॥८०॥ उन्होंने वस्त्र, आभूषण तथा असंख्य धन के साथ एक लाख ग्रामों का दान दिया ॥८१॥ उन्होंने भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मणों को तृप्त किया । कौसल्याजी भी कमल के समान नेत्र वाले अपने पुत्र श्रीरामजी को देखकर ॥८२॥ विकसित कमल के समान हाथ वाले तथा हाथ में कमल धारण किए हुए तथा विकसित कमल के समान उनके चरण कमल में ॥८३॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ध्वजा तथा वज्र का चिह्न देखकर वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभमणि तथा वनमाला से सुशोभीत शरीर में देवता, असुर तथा मनुष्य के साथ सम्पूर्ण जगत् को तथा मुस्कान युक्त मुख में उन्होंने चौदहों भुवनों को देखा ॥८४-८५॥ हे सुन्दरि ! श्रीभगवान् के निःश्वास में वेदों तथा इतिहासों को, उनकी जङ्घाओं में द्वीपों और समुद्रों को देखा । उनकी नाभि में ब्रह्माजी तथा शिवजी को तथा कानों में सभी दिशाओं को नेत्रों में अग्नि तथा सूर्य को और नासिका में अत्यधिक वेग सम्पन्न वायु को देखा ॥८६-८७॥ सम्पूर्ण उपनिषदों

ईश्वर उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो मात्रा सर्वगतो हरिः। मायामानुषतां प्राप्य शिशुभावाद्रुरोद सः ॥९०॥

अथ प्रमुदिता देवी कौसल्या शुभलक्षणम्।
पुत्रमालिङ्ग्यहर्षेणस्तन्यं प्रादात्सुमध्यमा ॥९१॥
तस्याः स्तन्यं पपौ देवो बालभावात्सनातनः।
उवास मातुरुत्सङ्गे जगद्भर्ता महाविभुः ॥९२॥

तस्मिन्दिने शुभे रम्ये सर्वकामप्रदे नृणाम्। उत्सवं चक्रिरे पौरा दृष्टा जानपदा नराः ॥९३॥
कैकेय्यां भरतो जज्ञे पाञ्चजन्यांशसम्भवः। सुमित्रा जनयामास लक्ष्मणंशुभलक्षणम्॥९४॥
शत्रुघ्नं च महाभागा देवशत्रुप्रतापनम्। अनन्तांशेन सम्भूतो लक्ष्मणः परवीरहा॥९५॥
सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः सञ्जज्ञेऽमितविक्रमः। ते सर्वे ववृधुस्तत्र वैवस्तमनो कुले ॥९६॥
संस्कृतास्ते सुताः सम्यग्वसिष्ठेनमहौजसा। अधीतवेदास्ते सर्वेश्रुतवन्तस्तथा नृपाः ॥९७॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा धनुर्वेदे च निष्ठिताः। बभूवुः परमोदारा लोकानां हर्षवर्द्धनाः ॥९८॥
युग्मं बभूवतुस्तत्र राजानौ रामलक्ष्मणौ। तथा भरतशत्रुघ्नौ पायसांशवशात्स्वतः ॥९९॥
अथ लोकेश्वरी लक्ष्मीर्जनकस्य निवेशने। शुभक्षेत्रे हलोत्खाते सुनासा सुशुभेक्षणा ॥१००॥
बालार्ककौटिसङ्काशा रक्तोत्पलकराम्बुजा। सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥१०१॥

के प्रतिपाद्य भूत उनकी विभूतियों को देखकर उनको बार-बार प्रणाम कीं तथा पूर्ण रूप से डर गयी थी। हर्ष जन्य आँसू से उनके नेत्र भर गये थे और हाथ जोड़कर उन्होंने कहा ॥८८॥ **कौसल्याजी बोली**— हे देवदेवेश ! हे प्रभो ! मैं आपको पुत्र रूप में पाकर मैं धन्य हो गयी। हे जगन्नाथ ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये। मुझे आप पुत्र का स्नेह प्रदर्शित करें ॥८९॥ **ईश्वर ने कहा**— माता के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर सर्वव्यापक श्रीहरि माया मनुष्यत्व को प्राप्त करके शिशु भाव से रोने लगे ॥९०॥ इसके पश्चात् कौसल्या देवीं ने शुभ लक्षण वाले पुत्र का आलिङ्गन करके उनके मुख में स्तन डाल दिया ॥९१॥ श्रीहरि उनके स्तन के दुग्ध को बालभाव के कारण पीये। जगत् के स्वामी अपनी माँ की गोद में निवास किए।॥९२॥ मनुष्यों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस शुभ तथा मनोहर दिन को सभी जनपद और नागरिक उत्सव मनाये ॥९३॥ कैकेयी के गर्भ से भरतजी पैदा हुए। वे पाञ्चजन्य शंस के अंश से उत्पन्न हुए थे। महाभागा सुमित्रा देवी ने शुभ लक्षणों से सम्पन्न लक्ष्मणजी तथा शत्रुघ्नजी को जन्म दिया। शत्रुघ्न शत्रुओं को संतप्त करने वाले थे। लक्ष्मणीजी अनंत के अंश से उत्पन्न हुए थे ॥९४-९५॥ सुदर्शन चक्र के अंश से निःसीम पराक्रम सम्पन्न शत्रुघ्नजी उत्पन्न हुए थे। वे सभी वैवस्वत मनु के वंश में वहीं बड़े हुए ॥९६॥ महर्षि वसिष्ठ के द्वारा संस्कार सम्पन्न होकर वे सब वेदाध्ययन किए और उसी के तरह वेदों का श्रवण किए ॥९७॥ वे सभी शास्त्रों के तत्त्वज्ञ और धनुर्वेद में निष्ठित थे। लोगों के हर्ष को बढ़ाने वाले वे अत्यन्त उदार हुए ॥९८॥ राम और लक्ष्मण वे दोनों जोड़ा बन गये। पायसाशवशात् स्वतः एक साथ हो गये ॥९९॥ इसके पश्चात् स्वयं लोकेश्वरी लक्ष्मीजी महाराज जनक के यहाँ। हल से जोते गये यज्ञ क्षेत्र में सुन्दर नासिक और नेत्र वाली करोड़ों बाल सूर्य के समान कान्ति के समान, लाल कर

धृतवा वक्षसि चार्वङ्गी मालामम्लानपङ्कजाम् ।
सीतामुखे समुत्पन्ना बालभावेनसुन्दरी ॥१०२॥
तां दृष्ट्वा जनको राजा कन्यां वेदमयींशुभाम् ।
उद्धत्याऽपत्यभावेनपुपोषमिथिलापतिः ॥१०३॥
जनकस्य गृहे रम्ये सर्वलोकेश्वरप्रिया । ववृधे सर्वलोकस्य रक्षणार्थं सुरेश्वरी॥१०४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि ! कौशिको लोकविश्रुतः ।
सिद्धाश्रमे महापुण्ये भागीरथ्यास्तटेशुभे ॥१०५॥
क्रतुप्रवरमारेभे यष्टुं तत्र महामुनिः । वर्त्तमानस्य तस्यास्य यज्ञस्याऽथ द्विजन्मनः ॥१०६॥
क्रतुविध्वंसिनोऽभूवन्रावणस्य निशाचराः । कौशिकश्चिन्तयित्वाऽथरघुवंशोद्भवंहरिम् ॥१०७॥
आनेतुमैच्छद्धर्मात्मा लोकानां हितकाम्यया । स गत्वा नगरीं रम्यामयोध्यां रघुपालिताम्॥१०८॥
नृपश्रेष्ठं दशरथं ददर्श मुनिसत्तमः ।
राजाऽपिकौशिकं दृष्ट्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥१०९॥
पुत्रैः सह महातेजा ववन्दे मुनिसत्तमम् । धन्योऽहमस्मीति वदन्हर्षेण रघुनन्दनः॥११०॥
अर्चयामास विधिना निवेश्य परमासने । परिणीय नमस्कृत्य किंकरोमीत्युवाच तम् ॥१११॥
ततः प्रोवाच हृष्टात्मा विश्वामित्रो महातपाः ॥११२॥

विश्वामित्र उवाच

देहि मे राघवं राजन्रक्षणार्थं क्रतोर्मम । साफल्यमस्तु मे यज्ञे राघवस्य समीपतः ॥
तस्माद्रामं रक्षणार्थं दातुमर्हसि भूपते ! ॥११३॥

कमल और पैरो वाली सभी लक्षणों से सम्पन्न तथा सभी भूषणों से भूषित ॥१००-१०१॥ सुन्दर अङ्गों वाली वे कभी भी नहीं मुरझाने वाले कमलों की माला धारण करके हल के फाल के अग्र भाग से बाल भाव से उत्पन्न हुयीं ॥१०२॥ राजा जनक वेदमयी उस शुभ कन्या को देखकर उसको सन्तान की भावना से उठाकर मिथिलापति ने पाला पोसा ॥१०३॥ जनकजी के घर में सम्पूर्ण लोकों की स्वामिनी सुरेश्वरी लोक की रक्षा करने के लिए बढ़ीं ॥१०४॥ इसी के बीच लोक विख्यात विश्वामित्र ऋषि भागरीरथी के तट पर अत्यन्त पवित्र सिद्धाश्रम में यज्ञ करने के लिए श्रेष्ठ यज्ञ प्रारम्भ किए। उन महर्षि के इस यज्ञ के होते रहने पर ॥१०५-१०६॥ रावण के राक्षस यज्ञ को विध्वंस करने वाले हो गये । कौशिक महर्षि विचार करके रघुवंश में उत्पन्न श्रीहरि को ॥१०७॥ संसार का कल्याण करने की कामना से लाने की इच्छा किये। रघुवंशियों द्वारा पालित अयोध्या नगरी में जाकर ॥१०८॥ वे मुनिश्रेष्ठ राजाओं में श्रेष्ठ महाराज दशरथ को देखे । राजा भी कौशिक मुनि को देखकर खड़ा होकर और हाथ जोड़कर ॥१०९॥ अपने पुत्रों के साथ मुनि श्रेष्ठ की वन्दना किए । हर्ष पूर्वक वे रघुनन्दन मैं तो धन्य हो गया कहकर ऋषि को श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर उनकी पूजा किए । सत्कार करके तथा नमस्कार करके उन्होंने कहा मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ॥११०-१११॥ उसके पश्चात् प्रसन्न होकर महातपस्वी विश्वामित्र बोले ॥११२॥ **विश्वामित्र महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! मेरे यज्ञ की रक्षा करने के लिए मुझे श्रीराघव को आप दे दें । श्रीराघव की संरक्षता

ईश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा मुनिवर्यस्य वाक्यं सर्वविदाम्वरः। प्रददौ मुनिवर्याय राघवं सह लक्ष्मणम् ॥११४॥
आदाय राघवौ तत्र विश्वामित्रो महातपाः। स्वमाश्रममतिप्रीतः प्रययौ द्विजसत्तमः ॥११५॥
ततः प्रहृष्टास्त्रिदशाः प्रयाते रघुसत्तमे !। ववृषुः पुष्पवर्षाणि तुष्टुवुश्च महौजसः ॥११६॥
अथाजगाम हृष्टात्मा वैनतेयो महाबलः। अदृश्यस्सर्वभूतानां सम्प्राप्य रघुसत्तमौ ॥११७॥

ताभ्यां दिव्ये च धनुषी तूणौ चाक्षयसायकौ ।
दिव्यान्यस्त्राणि शस्त्राणि दत्त्वा च प्रययौ द्विजः ॥११८॥
तौ रामलक्ष्मणौवीरौ कौशिकेन सहाऽध्वनि ।
गच्छन्तौविपिनेघोरेराक्षसींघोरदर्शनाम् ॥११९॥

नाम्ना तु ताटकांदेवि ! भार्यांसुन्दस्यरक्षसः। जघ्नतुस्तौ महावीरौबाणैर्दिव्यधनुश्च्युतैः ॥१२०॥
निहता राघवेणाऽथ राक्षसी घोरदर्शना। त्यक्त्वा तनुं घोररूपां दिव्यरूपा बभूव सा ॥१२१॥
जाज्वल्यमाना वपुषा सर्वाभरणभूषिता। प्रययौ वैष्णवं लोकं प्रणम्य च रघूत्तमौ ॥१२२॥

तां हत्वा राघवः श्रीमान्कौशिकस्याऽऽश्रमं शुभम् ।
प्रविवेश महातेजा लक्ष्मणेन महात्मना ॥१२३॥

ततः प्रहृष्टा मुनयः प्रत्युद्गम्य रघूत्तमम्। निवेश्य पूजयामासुरर्घाद्यैः परमासने ॥१२४॥
कौशिकः कृतदीक्षस्तु यष्टुं यज्ञमनुत्तमम्। आरेभे मुनिभिःसार्द्धं विधिना मुनिसत्तमः ॥१२५॥

में मेरा यज्ञ सफल हो जाय। अतएव रक्षा करने के लिए आप मुझे राघव को दे दीजिये ॥११३॥ **ईश्वर ने कहा—** मुनिवर्य के उस वाक्य को सुनकर सबकुछ जानने वालों में श्रेष्ठ महाराज दशरथ मुनिवर्य के साथ लक्ष्मण के साथ श्रीराम को दे दिए ॥११४॥ उन दोनों रघुवंशियों को लेकर महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक लौट गये ॥११५॥ उसके पश्चात् रघुश्रेष्ठ के चले जाने पर प्रसन्न होकर देवता पुष्पों की वर्षा किए और उनकी स्तुति किए ॥११६॥ उसके पश्चात् महाबलशाली गरुड़ आये। उनको जीव देख न सके रघुश्रेष्ठों को प्राप्त करके ॥११७॥ उन दोनों को दो दिव्य धनुष और जिनके बान कभी समाप्त न हों ऐसे दो तुणीर प्रदान किए और दिव्य अस्त्र शस्त्रों को देकर वे चले गये ॥११८॥ वे दोनों राम और लक्ष्मण वीर महर्षि कौशिक के साथ मार्ग में जाते हुए वन में देखने में भयङ्कर और घोर राक्षसी को देखे ॥११९॥ हे देवि ! उसका नाम ताटका था और वह सुन्दर नामक राक्षस की पत्नी थी। वे दोनों दिव्य धनुष से छूटे हुए सैकड़ों वाणों से उसको मार दिए ॥१२०॥ श्रीराम के द्वारा मारी गयी वह देखने में भयङ्कर राक्षसी अपने भयङ्कर शरीर को त्यागकर दिव्य रूप वाली हो गयी ॥१२१॥ देदीप्यमान शरीर के द्वारा, सभी आभरणों से अलंकृत वह उन दोनों रघुश्रेष्ठों को प्रणाम करके भगवान् विष्णु के लोक में चली गयी ॥१२२॥ उसको मारकर श्रीमान राघव कौशिक मुनि के शुभ आश्रम में गये। वे महातेजस्वी महात्मा लक्ष्मणजी के साथ उस आश्रम में प्रवेश किए ॥१२३॥ उसके पश्चात् प्रसन्न होकर मुनिगण उन दोनों की अगवानी किए और उनको श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर अर्घ्य आदि से उनकी पूजा किए ॥१२४॥ कौशिक महर्षि यज्ञ करने के लिए दीक्षा ग्रहण किए और मुनियों के साथ उन्होंने यज्ञ को प्रारम्भ किया ॥१२५॥

वर्त्तमाने महायज्ञे मारीचो नाम राक्षसः । भ्रात्रा सुबाहुना तत्र विघ्नं कर्तुमवस्थितः ॥१२६॥
दृष्ट्वा तौ राक्षसौ घोरौ राघवः परवीरहा। जघानैकेन बाणेन सुबाहुं राक्षसेश्वरम्॥१२७॥
पवनास्त्रेण महता मारीचं तु निशाचरम्। सागरे पातयामास शुष्कपर्णमिवाऽनिलः॥१२८॥
स रामस्य महावीर्यं दृष्ट्वा राक्षससत्तमः । न्यस्तशस्त्रस्तपस्तप्तुं प्रययौ महदाश्रमम् ॥१२९॥
विश्वामित्रो महातेजाः समाप्ते महातिक्रतौ। प्रहृष्टमनसा तत्र पूजयामास राघवम् ॥१३०॥
समाश्लिष्य महात्मानं काकपक्षधरं हरिम् । नीलोत्पलदलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥१३१॥
उपाघ्राय तदा मूर्ध्नि तुष्टाव मुनिसत्तमः । एतस्मिन्नन्तरे राजा मिथिलाया अधीश्वरः ॥१३२॥
वाजपेयं क्रतुं यष्टुमारेभे मुनिसत्तमैः । तं द्रष्टुं प्रययुस्सर्वे विश्वामित्रपुरोगमाः ॥१३३॥
मुनयो रघुशार्दूलसहिताः पुण्यचेतसः । गच्छतस्तस्य रामस्य पादाब्जेन महात्मनः ॥१३४॥
अभूत्सुरूपा वनिता समाक्रान्ता महाशिला। साऽपि शप्ता पुरा भर्त्रागौतमेनद्विजन्मना॥१३५॥
अहल्या रघुनाथस्यपादस्पर्शाच्छुभाभवत्। अथ सम्प्राप्यनगरीं मिथिलां मुनिसत्तमाः॥१३६॥
राघवाभ्यां तु सहिता बभूवुः प्रीतमानसाः । समागतान्महाभागान्दृष्ट्वा राजा महाबलः ॥१३७॥
प्रत्युद्गम्य प्रणम्याऽथ पूजयामास मैथिलः । रामं पद्मविशालाक्षमिन्दीवरदलप्रभम् ॥१३८॥
पीताम्बरधरं श्लक्ष्णं कोमलावयवोज्ज्वलम् ।
अवधीरितकन्दर्पकोटिलावण्यमुत्तमम् ॥१३९॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम्। स्वस्य हृत्पङ्कजे ध्येयं परेशस्य तनोर्हरिः॥१४०॥

यज्ञ के होते रहने पर मारीच नामक राक्षस अपने भाई सुबाहु के साथ यज्ञ में विघ्न करके के लिए वहाँ आया ॥१२६॥ उन दोनों भयङ्कर राक्षसों को देखकर शत्रुओं के वीरों को मारने वाले श्रीराम एक ही बाण से राक्षसेश्वर सुबाहु को मार दिए ॥१२७॥ उन्होंने वायव्यास्त्र के द्वारा मारीच को मारे और जिस तरह वायु सूखे पत्ते को उड़ा देती है उसी तरह उसको समुद्र में गिरा दिये ॥१२८॥ वह राक्षस श्रेष्ठ श्रीराम के पराक्रम को देखकर शस्त्रों को त्यागकर अपने आश्रम में तपस्या करने के लिए चला गया ॥१२९॥ महातेजस्वी विश्वामित्र महायज्ञ के समाप्त होने पर प्रसन्न मन से श्रीराम की पूजा किए ॥१३०॥ काकपक्षधारी नीलकमल दल के समान श्याम वर्ण वाले तथा पद्मपत्र के समान विशाल नेत्र वाले श्रीरामचन्द्रजी का आलिङ्गन करके तथा उनके शिर को सूंघ कर महामुनि विश्वामित्र उनकी स्तुति किए । इसी के बीच में मिथिला के अधिपति ॥१३१-१३२॥ श्रेष्ठ मुनियों के साथ वाजपेय यज्ञ करना प्रारम्भ किए । उस यज्ञ को देखने के लिए विश्वामित्र आदि पवित्र मन वाले मुनिगण ॥१३३॥ श्रीरामचन्द्र को साथ ले कर गये। जाते हुए श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमल से स्पृष्ट होकर महाशिला महात्मा गौतम की पत्नी सुन्दर रूप वाली हो गयी । उसको भी पहले उनके पति महात्मा गौतम शाप दे दिए थे ॥१३४-१३५॥ अहल्या श्रीरामचन्द्र के चरणों का स्पर्श होने से सुन्दरी हो गयी इसके पश्चात् मिथिला नगरी में आकर मुनिश्रेष्ठ गण ॥१३६॥ दोनों रघुवंशियों के साथ प्रसन्न हो गये । आये हुए महाभागों को देखकर महाबलवान राजा ॥१३७॥ मैथिल उनकी अगवानी करके तथा प्रणाम करके पूजा किए । कमल के समान बड़े-बड़े नेत्रों वाले तथा नील कमल के समान कान्ति वाले श्रीराम को ॥१३८॥ जो पीताम्बर धारण किए थे, सभी आभरणों से

उत्पन्नं दीपवद्दीपात्सौशील्यगुणसागरम् । तं दृष्ट्वा रघुनाथं स जनको हृष्टमानसः ॥१४१॥
परेशमेव तं मेने रामं दशरथात्मजम् । पूजयामास काकुत्स्थं धन्योऽस्मीति ब्रुवन्नृपः॥१४२॥
प्रसादं वासुदेवस्य विष्णोर्मेने नरेश्वरः । प्रदातुं दुहितां तस्मै मनसा चिन्तयन्प्रभुः ॥१४३॥
आत्मजौ रघुवंशस्य ज्ञात्वा तत्र नृपोत्तमः । पूजयामास धर्मेण वस्त्रैराभरणैः शुभैः ॥१४४॥
ऋषीन्समर्चयामास मधुपर्कादिपूजनैः । ततोऽवसाने यज्ञस्य रामो राजीवलोचनः॥१४५॥
भङ्क्त्वा शैवं धनुर्दिव्यं जितवाञ्जनकात्मजाम् ।
अथाऽसौ वीर्यशुल्केन महता परितोषितः ॥१४६॥
मुदा धरणिजां तस्मै प्रददौ मिथिलाधिपः । केशवाय श्रियमिव यथा पूर्वं महार्णवः ॥१४७॥
स दूतं प्रेषयामास राघवं मिथिलाधिपः । पुत्राभ्यांसहधर्मात्मा मिथिलायां विवेश ह ॥१४८॥
वसिष्ठवामदेवाद्यैः प्रीतैः सह महीपतिः । उपवास नगरे रम्ये जनकस्य रघूत्तमः ॥१४९॥
तस्मिन्नेव शुभे काले रामस्य धरणीसुताम् । विवाहमकरोद्राजा मैथिलेन समर्चितः॥१५०॥
लक्ष्मणस्योर्मिलांनाम कन्यांजनकसम्भवाम् । जनकस्याऽनुजस्याऽथतनये शुभवर्चसौ ॥१५१॥
माण्डवीश्रुतकीर्तिश्च सर्वलक्षणलक्षिते । भरतस्य च सौमित्रेर्विवाहमकरोन्नृपः ॥१५२॥
निर्वर्त्यौद्वाहिकं तत्र राजा दशरथो बली । अयोध्यां प्रस्थितः श्रीमान्पौरैर्जानपदैर्वृतः॥१५३॥

भूषित थे, कोमल अङ्गों वाले तथा करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाले थे, सभी लक्षणों से सम्पन्न थे अपने हृदय कमल में ध्यान करने योग्य श्रीहरि के शरीर वाले को ॥१३९-१४०॥ और दीप से उत्पन्न दीप के समान वे सौशील्य गुण के सागर थे उनको देखकर जनकजी मन से प्रसन्न हो गये॥१४१॥ वे दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी को परमात्मा के ही समान माने और काकुस्थ करके पूजा मैं तो धन्य हो गया। यह कहे ॥१४२॥ राजा उनको वासुदेव भगवान् विष्णु के प्रसाद के समान माने । वे अपने मन में उनको अपनी पुत्री को प्रदान करने का विचार किए ॥१४३॥ उन दोनों को रघुवंश का पुत्र जानकर श्रेष्ठ राजा जनक धर्म पूर्वक उन दोनों की पूजा शुभ वस्त्रों तथा आभूषणों से किए ॥१४४॥ मधुपर्क आदि के द्वारा उन्होंने ऋषियों की पूजा की । उसके पश्चात् यज्ञ के अन्त में कमल नयन श्रीराम ॥१४५॥ शिवजी के दिव्य धनुष को तोड़कर जनकात्मजा को जीत लिए । उसके पश्चात् राजा पराक्रम रूपी शुल्क के द्वारा अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥१४६॥ उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक पृथिवी की पुत्री सीताजी का उनके साथ उसी तरह से विवाह कर दिया जिस तरह महासागर ने लक्ष्मीजी को भगवान् केशव को प्रदान किया था ॥१४७॥ मिथिलाधिपति महाराज दशरथ के यहाँ दूतों को भेजे और वे अपने दो पुत्रों के साथ मिथिला में आये॥१४८॥ प्रसन्न होकर वे वसिष्ठ वामदेव आदि ऋषियों के साथ आये । वे रघूतम जनकजी के मनोहर नगर में निवास किए ॥१४९॥ उसी ही शुभ काल में राजा जनक के द्वारा पूजित होकर राजा ने श्रीराम का विवाह सीताजी के साथ किया । लक्ष्मणजी का विवाह जनकजी की पुत्री उर्मिला से हुआ । जनकजी के छोटे भाई की सुन्दर कान्ति वाली दो पुत्रियाँ थीं माण्डवी और श्रुतिकीर्ति, वे दोनों सभी लक्षणों से युक्त थीं उनका विवाह राजा ने भरतजी तथा शत्रुघ्नजी से कर दिया ॥१५०-१५२॥ वहीं पर वैवाहिक कर्मों को पूरा करके बलवान् राजा दशरथ नागरिकों तथा जनपद वासियों के साथ अयोध्या लौटे ॥१५३॥ महाराज जनक से

पारिबर्हं समादाय मैथिलेन च पूजितः । ससुतः सस्नुषः साश्वः सगजः सबलानुगः ॥१५४॥
तदध्वनि महावीर्यो जामदग्न्यः प्रतापवान्। गृहीत्वा परशुं चापं संक्रुद्धइव केसरी ॥१५५॥
अभ्यधावच्च काकुत्स्थं योद्धुकामो नृपान्तकः ।
सम्प्राप्य राघवंदृष्ट्वा वचनंप्राहभार्गवः ॥१५६॥

परशुराम उवाच

रामराममहाबाहो श्रृणुष्व वचनं मम । बहुशः पार्थिवान्हत्वा संयुगे भूरिविक्रमान् ॥१५७॥
ब्राह्मणेभ्यो महींदत्त्वा तपस्तप्तुमहंगतः। तव वीर्यबलं श्रुत्वा त्वयायोद्धुमिहाऽऽगतः॥१५८॥
इक्ष्वाकवो न वध्यामे मातामहकुलोद्भवाः । वीर्यं क्षत्रबलं श्रुत्वा न शक्यं सहितुं मम ॥१५९॥
रौद्रं चापं दुराधर्षं भज्यमानं त्वया नृप ! । तस्माद्वदान्य ! युद्धं मे दीयतां रघुसत्तम ! ॥१६०॥
इदं तु वैष्णवं चापं तेन तुल्यमरिन्दम ! । आरोपयस्ववीर्येण निर्जितोऽस्मि त्वयैवहि ॥१६१॥
अथवात्यज शस्त्राणि पुरस्तादबलिनोमम । शरणंभजकाकुत्स्थ ! कातरोऽस्यपिचेदिह ॥१६२॥

ईश्वर उवाच

एवमुक्तस्तुकाकुत्स्थो भार्गवेण प्रतापवान्। तच्चापं तस्यजग्राह तच्छक्तिंवैष्णवीमपि ॥१६३॥
शत्तया वियुक्तस्सतदा जामदग्न्यःप्रतापवान्। निर्वीर्यो नष्टतेजाश्च कर्महीनोयथाद्विजः ॥१६४॥
विनष्टतेजसं दृष्ट्वा भार्गवं नृपसत्तमाः। साधुसाध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुर्मुहुर्मुहुः॥१६५॥
काकुत्स्थस्तन्महच्चापं गृहीत्वाऽऽरोप्य लीलया ।
सन्धाय बाणं तच्चापे भार्गवं प्राह विस्मितम् ॥१६६॥

दहेज लेकर और उनसे पूजित राजा अपने पुत्रों तथा पुत्र वधुओं के साथ, घोड़े, हाथी और अनुचरों के साथ अयोध्या के लिए चले ॥१५४॥ उनके मार्ग में प्रतापी परशुराम जी फरसा और धनुष लेकर क्रुद्ध सिंह के समान आये ॥१५५॥ राजाओं को मारने वाले वे श्रीराम के साथ युद्ध करने के लिए आये । श्रीराम को देखकर परशुरामजी ने कहा ॥१५६॥ **परशुरामजी बोले**— हे महाबाहो ! श्रीराम आप मेरी बात सुनें । अत्यन्त पराक्रमी अनेक राजाओं को युद्ध में मारकर मैंने पृथिवी को अनेक बार ब्राह्मणों को दान कर दिया । उसके बाद मैं तपस्या करने के लिए चला गया । तुम्हारे पराक्रम और बल को सुनकर तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिए आया हूँ ॥१५७-१५८॥ मेरे मातामह के वंश में उत्पन्न इक्ष्वाकु वंशीय मेरे बध्य नहीं हैं किन्तु पराक्रम और क्षत्रिय बल को सुनकर उसे मैं बर्दास्त नहीं कर सकता हूँ । अतएव हे वदान्य ! आप मेरे साथ युद्ध करें ॥१५९-१६०॥ हे अरिन्दम यह भगवान् विष्णु का धनुष हैं । तुम अपने पराक्रम से चढ़ा दो तो इतने मात्र से मैं तुमसे पराजित अपने को मान लूँगा ॥१६१॥ अथवा बलवान् मेरे समय तुम शस्त्रों का परित्याग कर दो । हे काकुत्स्थ ! यदि तुम कायर हो तो फिर शरणागत हो जाओ ॥१६२॥ **ईश्वर ने कहा**— इस तरह परशुरामजी के कहने पर प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी ने उनके उस धनुष को लिया और उनकी वैष्णवी शक्ति को भी ले लिया ॥१६३॥ उस समय प्रतापी परशुरामजी शक्ति से विहीन हो गये । वे कर्महीन ब्राह्मण के समान पराक्रम हीन और तेजहीन हो गये ॥१६४॥ तेज रहित परशुरामजी को देखकर राजश्रेष्ठ ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा इस तरह श्रीरामचन्द्रजी को कहे ॥१६५॥

राम उवाच

अनेन शरमुख्येण किंकर्त्तव्यं मया द्विज !। छेद्मि लोकद्वयं चापि स्वर्गंवाहन्मि तेद्विज ॥१६७॥

ईश्वर उवाच

तं दृष्ट्वा घोरसङ्काशं बाणं रामस्य भार्गवः ।
ज्ञात्वा तं परमात्मानं प्रहृष्टो राममब्रवीत् ॥१६८॥

परशुराम उवाच

रामराममहाबाहो ! न वेद्मित्वां सनातनम्। जानाम्यद्यैव काकुत्स्थ ! तववीर्यगुणादिभिः॥१६९॥
त्वमादिपुरुषः साक्षात्परं ब्रह्मपरोऽव्ययः। त्वमनन्तो महाविष्णुर्वासुदेवः परात्परः ॥१७०॥
नारायणस्त्वं श्रीशस्त्वमीश्वरस्त्वं त्रयीमयः। त्वं कालस्त्वं जगत्सर्वमकाराख्यस्त्वमेव च ॥१७१॥
स्त्रष्टा धाता च संहर्त्ता त्वमेव परमेश्वरः । त्वमचिन्त्यो महद्भूतं विश्वरूपस्त्वणुर्महान्॥१७२॥
चतुः षद्पञ्चगुणवांस्त्वमेव पुरुषोत्तमः। त्वं यज्ञस्त्वं वषद्कारस्त्वमोङ्कारस्त्रयीमयः ॥१७३॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं गुणभृन्निर्गुणः परः। स्तोतुं त्वाहमशक्तश्च वेदानामप्यगोचरम्॥१७४॥

यच्चाऽपमानंकृतवांस्त्वां युयुत्सुतया प्रभो ! ।
तत्क्षन्तव्यं त्वया नाथ ! कृपया केवलेन तु ॥१७५॥
तव शत्तया नृपान्सर्वाञ्जित्वा दत्त्वा महीं द्विजान् ।
त्वत्प्रसादवशादेव शान्तिमाप्नोमि नैष्ठिकीम् ॥१७६॥

ईश्वर उवाच

एवमुत्तवा तु काकुत्स्थं जामदग्न्यो महातपाः ।
परिणीय नमस्कृत्य राघवंलोकरक्षकम् ॥१७७॥

श्रीरामचन्द्रजी उस महान् धनुष को लीला पूर्वक चढा दिए। उस धनुष पर वाण का सन्धान करके विस्मित परशुरामजी से कहे ॥१६६॥ **श्रीरामजी ने कहा—** हे द्विज ! इस मुख्यबाण से मैं क्या करूँ ? आपके दोनों लोकों को विनष्ट कर दूँ अथवा अपके स्वर्ग को विनष्ट कर दूँ ॥१६७॥ **ईश्वर ने कहा—** श्रीरामचन्द्रजी के अत्यन्त भयङ्कर उस बाण को देखकर परशुरामजी ने उनको परमात्मा जानकर प्रसन्न होकर कहे ॥१६८॥ **परशुरामजी बोले—** हे महाबाहो श्रीराम ! मैं आपको सनातन नहीं जानता था। काकुत्स्थ आज ही मैंने आपको पराक्रम और गुणों आदि के द्वारा जाना ॥१६९॥ आप साक्षत् आदि पुरुष हैं और अव्यय परब्रह्म हैं। आप ही अनन्त, महाविष्णु, परात्पर वासुदेव हैं ॥१७०॥ आपही नारायण, लक्ष्मीपति, और त्रर्यीमय ईश्वर हैं। आप काल है, सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं, अकार वाच्य भी आप ही हैं ॥१७१॥ आप ही सृष्टि करने वाले संहार करने वाले तथा परमेश्वर हैं। आप अचिन्त्य, अणु, महान् तथा सम्पूर्ण जगत् शरीरक हैं ॥१७२॥ चार, छह और पाँच गुण वाले आप ही पुरुषोत्तम हैं। आप ही यज्ञ, वषट्कार तथा त्रयीमय ओङ्कार हैं ॥१७३॥ आप व्यक्त स्वरूप तथा अव्यक्त स्वरूप हैं। आप गुणों से सम्पन्न और निर्गुण हैं। वेदों के भी अविषयभूत आपका वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥१७४॥ हे प्रभो ! युद्ध करने की इच्छा से मैंने जो आपका अपमान किया है हे नाथ ! केवल कृपा करके आप उसे क्षमा कर दें ॥१७५॥ आपकी ही शक्ति से सभी राजाओं से पृथिवी को जीतकर मैंने ब्राह्मणों को दान दिया है। अव आपकी ही कृपा

शतक्रतुकृतं स्वर्गं तदस्त्राय न्यवेदयत् । राघवोऽथ महातेजा ववन्दे तं महामुनिम् ॥१७८॥
विधिवत्पूजयामास पाद्यार्घ्याचमनादिभिः। तेन सम्पूजितस्तत्र जामदग्न्यो महातपाः ॥१७९॥
तपस्तप्तुं ययौ रम्यं नरनारायणाश्रमम्। राजा दशरथः सोऽथ पुत्रैर्दारसमन्वितैः ॥१८०॥
स्वां पुरीं सुमुहूर्त्तेन प्रविवेश महाबलः । राघवो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नो भरतस्तथा॥१८१॥
स्वान्स्वान्दारानुपागम्य रेमिरे हृष्टमानसाः । तत्र द्वादशवर्षाणि सीतया सह राघवः ॥१८२॥
रमयामास धर्मात्मा नारायणइव श्रिया । तस्मिन्नेव तु राजाऽथ काले दशरथःसुतम् ॥१८३॥
ज्येष्ठंराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्यामहीपतिः । तस्यभार्याऽथ कैकेयी पुरा दत्तवराप्रिया॥१८४॥
अयाचत नृपश्रेष्ठं भरतस्याऽभिषेचनम्। विवासनं च रामस्य वत्सराणि चतुर्दश ॥१८५॥
स राजा सत्यवचनाद्रामं राज्यादहो सुतम् । विवासयामास तदा दुःखेन हतचेतनः॥१८६॥

शक्तोऽपि राघवस्तस्मिनराज्यं सन्त्यज्य धर्मतः ।
दशग्रीववधार्थाय पितुर्वचनहेतुना ॥१८७॥

वनं जगाम काकुत्स्थो लक्ष्मणेनच सीतया। राजा पुत्रवियोगार्त्तः शोकेनच ममारसः ॥१८८॥

नियुज्यमानो भरतस्तस्मिन्राज्ये स मन्त्रिभिः ।
नैच्छद्राज्यं स धर्मात्मा सौभ्रात्रमनुदर्शयन् ॥१८९॥

वनमागम्य काकुत्स्थमयाचद्भ्रातरं ततः। रामस्तु पितुरादेशान्नैच्छद्राज्यमरिन्दमः॥१९०॥

से मैं नैष्ठिक शान्ति को प्राप्त कर रहा हूँ ॥१७६॥ **ईश्वर ने कहा—** इस तरह श्रीरामचन्द्रजी को कहकर महातपस्वी परशुरामजी उन लोकों की रक्षा करने वाले श्रीरामचन्द्रजी की प्रदक्षिणा और नमस्कार करके इन्द्र के द्वारा रचित स्वर्ग और उस अस्त्र को उन्होंने उन्हें दे दिया । उसके बाद महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी उन मुनि की वन्दना किए ॥१७७-१७८॥ उन्होंने उनकी पाद्य, अर्घ्य तथा अर्चना आदि से सविधि पूजा की। उनके द्वारा वहाँ पर पूजित होकर श्रीपरशुरामजी ॥१७९॥ तपस्या करने के लिए मनोहर बदरिकाश्रम मे चले गये । उसके बाद महाराज दशरथ पत्नियों के साथ अपने पुत्रों को लेकर सुन्दर मुहूर्त में अपनी नगरी में प्रवेश किए । श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ॥१८०-१८२॥ अपनी-अपनी पत्नियों को प्राप्त करके प्रसन्न मन से उनके साथ रमण किए । वहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के साथ बारह वर्षों तक लक्ष्मीजी के साथ नारायण के समान रमण किए । उसी समय महाराज दशरथ अपने पुत्र को देखकर ॥१८३॥ अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को प्रेम पूर्वक राज्य देने की इच्छा किए । तदनन्तर उनकी प्रिया पत्नी कैकेयी जिनको पहले ही राजा ने वर दिया था ॥१८४॥ उनहोंने राजा से भरत के अभिषेक की याचना की और श्रीराम को चौदह वर्षों के लिए वनवास माँगा ॥१८५॥ सत्यवादी राजा होने के कारण राजा दशरथ अपने पुत्र श्रीराम को राज्य से वन में भेज दिये । उस समय दुःख के कारण हतबुद्धि श्रीरामजी ॥१८६॥ समर्थ होकर भी उस राज्य को छोड़कर धर्मानुसार, पिता के वचन के कारण और रावण को मारने के लिए॥१८७॥ लक्ष्मण तथा सीताजी के साथ वन में चले गये । राजा भी अपने पुत्र के वियोग के कारण दुःखी होकर शोक करते हुए मर गये ॥१८८॥ भरतजी मन्त्रियों के द्वारा उस राज्य पर अभिषिक्त किये जाते हुए भ्रातृप्रेम को प्रदर्शित करते हुए राज्य लेना नहीं चाहे ॥१८९॥ वे उसके बाद वन में आकर अपने बड़े भाई से

स्वपादुके ददौ तस्मै भक्तयासोऽप्यग्रहीत्तथा ।
रामस्य पादुके राज्यमवाप्यभरतःशुभे ! ॥१९१॥
प्रत्यहं गन्धपुष्पैश्च पूजयन्कैकयीसुतः। तपश्चरणयुक्तेन तस्मिंस्तस्थौ नृपोत्तमः॥१९२॥
यावदागमनं तस्य राघवस्य महात्मनः। तावद्व्रतपराः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः॥१९३॥
राघवश्चित्रकूटाद्रौ भरद्वाजाश्रमे शुभे। रमयामास वैदेह्या मन्दाकिन्या जले शुभे॥१९४॥
कदाचिदङ्के वैदेह्याः शेते रामो महामनाः। ऐन्द्रिः काकस्समागम्य तस्मिन्नेव चचारह॥१९५॥
स दृष्ट्वा जानकीं तत्र कन्दर्पशरपीडितः। विददार नखैस्तीक्ष्णैः पीनोन्नतपयोधरम्॥१९६॥
तं दृष्ट्वा वायसं रामः कुशंजग्राह पाणिना ।
ब्रह्मणोऽस्त्रेण संयोज्य चिक्षेप धरणीधरः ॥१९७॥
तत्तृणं घोरसङ्काशं ज्वालारचितविग्रहम्। दृष्ट्वा काकः प्रदुद्राव विमुञ्चन्कातरं स्वरम्॥१९८॥
तं काकं प्रत्यनुययौ रामस्याऽस्त्रंसुदारुणम्। वायसस्त्रिषु लोकेषु बभ्राम भयपीडितः॥१९९॥
यत्र यत्र ययौ काकः शरणार्थी स वायसः ।
तत्र तत्र तदस्त्रन्तु प्रविवेश भयावहम् ॥२००॥
ब्रह्माणमिन्द्रं रुद्रं च यमं वरुणमेव च। शरणार्थी जगामाऽऽशु वायसः शस्त्रपीडितः॥२०१॥
तंदृष्ट्वावायसं सर्वे रुद्राद्या देवदानवाः। न शक्ताः स्मो वयं त्रातुमिति प्राहुर्मनीषिणः॥
अथ प्रोवाच भगवान्ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ॥२०२॥

ब्रह्मोवाच

भोभोबलिभुजां श्रेष्ठ ! तमेव शरणं व्रज। स एव रक्षकः श्रीमान्सर्वेषां करुणानिधिः॥२०३॥

प्रार्थना किये; किन्तु श्रीराम अपने पिता के आदेश के कारण राज्य लेना नहीं चाहें ॥१९०॥ उन्होंने भरतजी को अपनी चरणपादुकाओं को प्रदान कर दिया वे भी उसे भक्ति पूर्वक स्वीकार कर लिए । श्रीरामजी की पादुकाओं को भरत ने सिंहासन पर स्थापित कर दिया ॥१९१॥ प्रतिदिन चन्दन और पुष्पों से उन दोनों पादुकाओं की पूजा करते हुए तपस्या करते हुए भरतजी अयोध्या में रहे ॥१९२॥ रामजी के वन में आने के काल तक अयोध्या पुरवासी व्रत परायण रहे ॥१९३॥ श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूट में भरद्वाज आश्रम में जानकीजी के साथ जाह्नवी के जल में क्रीडा करते थे ॥१९४॥ एक बार जानकीजी के गोद में श्रीरामचन्द्रजी सो रहे थे काकवेषधारी इन्द्र का पुत्र वहीं पर आकर विचरण करने लगा ॥१९५॥ वह जानकीजी को देखकर कामार्त हो गया । उसने अपने तीक्ष्ण नखों से जानकीजी के मोटे और उठे हुए स्तनों को चीर दिया ॥१९६॥ उस कौए को देखकर श्रीरामचन्द्रजी अपने हाथ में कुश ले लिए और उसको ब्रह्मास्त्र से संयुक्त करके श्रीभगवान् उसे फेकों ॥१९७॥ वह तृण भयङ्कर ज्वाला से युक्त हो गया उसको देखकर वह कौआ आर्त स्वर करता हुआ वहाँ से भाग चला ॥१९८॥ कौए के पीछे श्रीरामजी का वह भयङ्कर अस्त्र चलता गया । वह कौआ भयभीत होकर तीनों लोकों में घूमा ॥१९९॥ रक्षक प्राप्त करने के लिए वह कौआ जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ भयङ्कर अस्त्र चलता गया ॥२००॥ ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, यम तथा वरुण के पास वह शरणार्थी काक गया क्योंकि वह शस्त्र से भयभीत था ॥२०१॥ उसको देखकर मनीषी रुद्र देवता

रक्षत्येव क्षमासारो वत्सलश्शरणागतान्। ईश्वरः सर्वभूतानां सौशील्यादिगुणान्वितः ॥२०४॥
रक्षिता जीवलोकस्य पितामातासखासुहृत् । शरणं व्रज देवेशं नान्यत्र शरणं द्विज ! ॥२०५॥

महादेव उवाच

इत्युक्तस्तेन बलिभुग्ब्रह्मणा रघुनन्दनम्। उपेत्य सहसा भूमौ निपपात भयातुरः ॥२०६॥
प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताऽथ वायसम्। त्राहित्राहीति भर्तारमुवाच विनयाद्विभुम् ॥२०७॥
पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा। तच्छिरःपादयोस्तस्य योजयामास जानकी ॥२०८॥
समुत्थाप्य करेणाऽथ कृपापीयूषसागरः। ररक्ष रामो गुणवान्वायसं दययाऽर्दितः ॥२०९॥
तमाह वायसं रामो माभैरिति दयानिधिः। अभयन्तेप्रदास्यामि गच्छगच्छयथासुखम् ॥२१०॥
प्रणम्य राघवायाऽथ सीतायैच मुहुर्मुहुः। स्वर्ल्लोकं प्रययावाशु राघवेण च रक्षितः ॥२११॥
ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन च धीमता। उवास चित्रकूटाद्रौ स्तूयमानो महर्षिभिः ॥२१२॥
तस्मिन्सम्पूज्यमानस्तु भरद्वाजेन राघवः । जगामात्रेस्सुविपुलमाश्रमं रघुसत्तमः ॥२१३॥
समागतं रघुवरं दृष्ट्वा मुनिवरोत्तमः। भार्यया सह धर्मात्मा प्रत्युद्गम्य मुदा युतः ॥२१४॥
आसने सुशुभे मुख्ये निवेश्यसह सीतया। अर्घ्यं पाद्यंतथाऽचामंवस्त्राणिविविधानिच ॥२१५॥
मधुपर्कं ददौ प्रीत्या भूषणं चाऽनुलेपनम्। तस्य पत्न्यनसूया तु दिव्याम्बरमनुत्तमम्॥२१६॥

और दानव कहे कि हमलोग रक्षा करने में समर्थ नहीं है । उसके पश्चात् त्रैलोक्य के स्वामी ब्रह्माजी ने कहा॥२०२॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे श्रेष्ठ काक ! तुम उनकी ही शरण में जाओ । वे करुणा सागर ही सबों की रक्षा करने वाले हैं ॥२०३॥ वे शरणागत वत्सल ही तुम्हारी रक्षा करेंगे । वे सभी जीवों के नियामक और सौशील्य आदि गुणों से परिपूर्ण हैं ॥२०४॥ वे सम्पूर्ण जीवों के रक्षक पिता, माता, सुहृत तथा सखा हैं । हे काक ! उन्हीं देवेश के शरण में जाओ दूसरी जगह कहीं भी तुम्हारा कोई रक्षक नहीं है ॥२०५॥ **महादेवजी ने कहा—** इस तरह ब्रह्माजी के द्वारा कहे जाने पर वह कौआ भगवान् श्रीराम के पास आकर भयभीत होकर सहसा पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२०६॥ कौए को मरणासन्न देखकर जानकीजी विनय पूर्वक श्रीरामजी से कहीं, इसकी रक्षा कीजिए, इसकी रक्षा कीजिए ॥२०७॥ सामने कौए को पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर उसके शिर को वे श्रीरामजी के चरणों से लगा दीं ॥२०८॥ उसके पश्चात् कृपा रूपी अमृत के सागर गुणवान् श्रीरामजी ने उस कौए की रक्षा की ॥२०९॥ उस कौए से दयासागर भगवान् राम ने कहा तुमको मैं अभय प्रदान करता हूँ जहाँ मन हो वहाँ जाओ ॥२१०॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी को तथा सीताजी को बार-बार प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी से रक्षित होकर वह शीघ्र स्वर्गलोक चला गया॥२११॥ उसके बाद श्रीरामजी जानकीजी तथा लक्ष्मणजी के साथ महर्षियों द्वारा स्तुति किए जाते हुए चित्रकूट पर्वत पर सुख पूर्वक निवास किए ॥२१२॥ वहाँ पर भरद्वाज महर्षि से पूजित होते हुए श्रीरामचन्द्रजी महर्षि अत्रि के विस्तृत आश्रम में गये ॥२१३॥ आये हुए श्रीरामचन्द्रजी को देखकर मुनियों में श्रेष्ठ वे अपनी पत्नी के साथ प्रसन्नता पूर्वक उनकी आगवानी किए ॥२१४॥ सुन्दर आसन पर सीताजी के साथ श्रीरामजी को बैठाकर, अर्घ्य, पाद्य, आचमन तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों को प्रदान किए ॥२१५॥ उन्होंने प्रेमपूर्वक मधुपर्क प्रदान करके भूषण तथा चन्दन दिया । उनकी पत्नी अनसूया सर्वश्रेष्ठ दिव्य वस्त्र और चमकते हुए

सीतायै प्रददौ प्रीत्या भूषणानि द्युमन्तिच। दिव्यान्नपानभक्ष्याद्यैर्भोजयामासराघवम् ॥२१७॥
तेन सम्पूजितस्तत्र भक्त्या परमया नृपः। उवास दिवसं तत्र प्रीत्या रामस्सलक्ष्मणः॥२१८॥
प्रभाते विमले रामः समुत्थाय महामुनिम् । परिणीय प्रणम्याऽथ गमनायोपचक्रमे॥२१९॥
अनुज्ञातस्ततस्तेन रामो राजीवलोचनः। प्रययौ दण्डकारण्यं महर्षिकुलसङ्कुलम्॥२२०॥
तत्राऽतिभीषणं घोरं विराधं नाम राक्षसम्। हत्वाऽथ शरभङ्गस्य प्रविवेशाऽऽश्रमं शुभम्॥२२१॥

स तु दृष्ट्वाऽथ काकुत्स्थं सद्यःसंक्षीणकल्मषः ।
प्रययौ ब्रह्मलोकं तु गन्धर्वाप्सरसान्वितम् ॥२२२॥

सुतीक्ष्णस्याऽप्यगस्त्यस्यह्यगस्त्यभ्रातुरेवच । क्रमेण प्रययौ रामस्तैश्चसंपूजितस्तथा ॥२२३॥
पञ्चवट्यां ततो रामो गोदावर्यास्तटे शुभे। उवाच सुचिरं कालं सुखेन परमेण च॥२२४॥
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठास्तापसा धर्मचारिणः। पूजयामासुरात्मेशं रामं राजीवलोचनम्॥२२५॥

भयं विज्ञापयामासुस्तस्य रक्षोगणोत्थितम् ।
तानाश्वास्य तु काकुत्स्थो ददौ चाऽभयदक्षिणाम् ॥२२६॥

ते तु सम्पूजितास्तेन स्वाश्रमान्सम्प्रपेदिरे। तस्मिंस्त्रयोदशाब्दानि रामस्य परिनिर्ययुः॥२२७॥
गोदावर्यास्तटे रम्ये पञ्चवट्यां मनोरमे। कस्यचित्त्वथ कालस्य राक्षसी घोररूपिणी॥२२८॥
रावणस्य स्वसा तत्र प्रविवेश दुरासदा। सा तु दृष्ट्वा रघुवरंकोटिकन्दर्पसन्निभम्॥२२९॥
इन्दीवरदलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम्। प्रोन्नतासं महाबाहुं कम्बुग्रीवं महाहनुम्॥२३०॥

आभूषण प्रदान की । उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को दिव्य, अन्न, जल तथा भक्ष्य पदार्थों से भोजन कराया ॥२१६-२१७॥ वहाँ पर उनके द्वारा अत्यन्त भक्ति पूर्वक पूजित होकर श्रीरामजी प्रेम पूर्वक लक्ष्मणजी के साथ एक दिन निवास किए ॥२१८॥ स्वच्छ प्रातकाल होने पर श्रीरामजी उठकर महामुनि की परिक्रमा तथा प्रणाम करके जाने के लिए तैयार हुए ॥२१९॥ महर्षि के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके राजीव लोचन रामजी महर्षि समूह के द्वारा सेवित दण्डकारण्य में गये ॥२२०॥ वहाँ पर अत्यन्त भयङ्कर विराध नामक राक्षस को मारकर उसके पश्चात् वे शरभङ्ग महर्षि के आश्रम में चले गये ॥२२१॥ वे काकुत्सथ भगवान् को देखकर निश्कल्मष होकर गन्धर्वों तथा अप्सराओं से सेवित शीघ्र ही सत्य लोक में चले गये ॥२२२॥ सुतीक्ष्ण, आगस्त्य तथा अगस्त्य महर्षि के भाई के आश्रम में वे क्रमशः गये । तथा उन लोगों के द्वारा पूजित श्रीरामजी पञ्चवटी के शुभ गोदावरी नदी के तट पर दीर्घकाल तक सुख पूर्वक निवास किए॥२२३-२२४॥ वहाँ पर जाकर तपस्वीगण धर्माचरण करने वाले आत्मेश श्रीरामचन्द्रजी की पूजा किए ॥२२५॥ उन्होंने वहाँ राक्षसों से होने वाले भय को भी उनको बतलाया । उन लोगों को आश्वस्त करके श्रीरामचन्द्रजी ने दक्षिणा में उन लोगों को अभय प्रदान किया ॥२२६॥ श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा पूजित होकर वे मुनिगण अपने-अपने आश्रमों में आ गये । उस आश्रम में श्रीरामचन्द्रजी के तेरह वर्ष बीत गये ॥२२७॥ गोदावरी के मनोहर तथा शुभ तट पर एक समय घोर रूप वाली राक्षसी आयी रावण की भयङ्कर बहन थी वही वहाँ आयी । उसने करोड़ों कामदेव के समान नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले एवं कमलदल के समान सुन्दर नेत्र वाले उठी हुयी नाक वाले तथा महाबाहु वाले शङ्ख के समान ग्रीवा वाले, महाहनु से युक्त

सम्पूर्णचन्द्रसदृशसस्मिताननपङ्कजम् । भृङ्गावलिनिभैः स्निग्धैः कुटिलैः शीर्षजैर्वृतम्॥२३१॥
रक्तारविन्दसदृशपद्महस्ततलाङ्कितम् । निष्कलङ्केन्दुसदृशनखपङ्क्तिविराजितम् ॥२३२॥
स्निग्धकोमलदूर्वाभं सौकुमार्यनिधिं शुभम् । पीतकौशेयवसनं सर्वाभरणभूषितम् ॥२३३॥
युवाकुमारवयसं जगन्मोहनविग्रहम् । दृष्ट्वा तं राक्षसी रामं कन्दर्पशरपीडिता ॥
अब्रवीत्समुपेत्याऽथ रामं कमललोचनम् ॥२३४॥

राक्षस्युवाच

कस्त्वं तापसवेषेण वर्त्तसे दण्डकावने। आगतोऽसि किमर्थं च राक्षसानां दुरासदे॥
शीघ्रमाचक्ष्व तत्त्वेन नाऽनृतं वक्तुमर्हसि ॥२३५॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्तः स तदा रामः सम्प्रहस्याऽब्रवीद्वचः ॥२३६॥

राम उवाच

राज्ञो दशरथस्याऽहम्पुत्रो रामइतीरितः । असौममाऽनुजोधन्वीलक्ष्मणोनामचाऽनघः ॥२३७॥
पत्नी चेयं च मे सीता जनकस्याऽऽत्मजा प्रिया ।
पितुर्वचननिर्देशादहंवनमिहाऽगतः ॥२३८॥
विचरामो महारण्यमृषीणां हितकाम्यया। आगताऽसि किमर्थं त्वमाश्रमंमम सुन्दरि !॥
का त्वं कस्य कुले जाता सर्वं सत्यं वदस्व मे ॥२३९॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्ता सा तु रामेण प्राह वाक्यमशङ्किता ॥२४०॥

राक्षस्युवाच

अहं विश्रवसः पुत्रीं रावणस्य स्वसा नृप ! ।
नाम्ना शूर्पणखानाम त्रिषुलोकेषु विश्रुता ॥२४१॥

सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान मुस्कान से युक्त मुख कमल वाले, भ्रमर समूह क समान चिकने तथा घुंघराले केशों वाले, लाल कमल के समान लाल-लाल हाथ और चरण कमल वाले तथा कलङ्क रहित चन्द्रमा के समान नख पंक्ति से सुशोभित ॥२२८-२३२॥ चिकने दुर्वा दल के समान कान्ति वाले सौकुमार्य के सागर, पीताम्वरधारी तथा सभी आभरणों से भूषित, युवा तथा कुमारावस्था वाले एवं जगत् को मोहित कर देने वाले शरीर वाले श्रीरामचन्द्र को देखकर कामार्त हो गयी । वह श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर कही ॥२३३-२३४॥ **राक्षसी ने कहा**— तुम कौन हो और तपस्वी के वेष में दण्डकारण्य में रहते हो। राक्षस आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं । तुम किसलिए यहाँ आये हो ? यह मुझे शीघ्र बतलाओ॥२३५॥ **महेश्वर ने कहा**— इस तरह से कहने पर श्रीरामजी जोर से हँसकर कहे ॥२३६॥ **श्रीराम ने कहा**— मैं महाराज दशरथ का पुत्र हूँ । ये मेरे लक्ष्मण नाम के अनघ निष्पाप अनुज हैं ॥२३७॥ यह जनक की पुत्री सीता मेरी पत्नी है । पिता के वचन और निर्देश के कारण मैं यहाँ वन में आया हूँ ॥२३८॥ इस महारण्य में मैं ऋषियों का कल्याण करने के लिए विचरण करता हूँ । हे सुन्दरि ! तुम मेरे आश्रम में क्यों आयी हो ? तुम कौन हो ? किसके वंश में उत्पन्न हुयी हो मुझको सत्य बतलाओ ॥२३९॥ **महेश्वर ने कहा**—

इदं च दण्डकारण्यं भ्रात्रा दत्तं मम प्रभो ! ।
भक्षयन्त्यृषिसङ्घान्वै विचरामि महावने ॥२४२॥
त्वां तु दृष्ट्वा मुनिवरं कन्दर्पशरपीडिता । रन्तुकामात्वयासार्धमागताऽस्मिसुनिर्भया ॥२४३॥
मम त्वं नृपशार्दूल ! भर्ताभवितुमर्हसि । इमां तव सतीं सीतां भक्षयिष्यामि पार्थिव !॥२४४॥
वनेषु गिरिमुख्येषु विचरामि त्वया सह ॥२४५॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा राक्षसीं सीतां ग्रसितं वीक्ष्य चोद्यताम् ।
श्रीरामः खड्गमुद्यम्य नासाकर्णौ प्रचिच्छिदे ॥२४६॥
रुदन्ती सभयं शीघ्रं राक्षसीविकृतानना । खरालयं प्रविश्याऽऽह तस्य रामस्यचेष्टितम्॥२४७॥
स तु राक्षससाहस्रैर्दूषणत्रिशिरोवृतः । आजगाम भृशं योद्धुं राघवं शत्रुसूदनम् ॥२४८॥
तान्रामः कानने घोरे बाणैःकालान्तकोपमैः ।
निजघानमहाकायान्राक्षसांस्तत्रलीलया ॥२४९॥
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं तु महाबलम्। रणे निपातयामास बाणैराशीविषोपमैः ॥२५०॥
निहत्य राक्षसान्सर्वान्दण्डकारण्यवासिनः । पूजितः सुरसङ्घैश्चस्तूयमानोमहर्षिभिः ॥२५१॥
उवास दण्डकारण्ये सीतया लक्ष्मणेन च । राक्षसानांवधं श्रुत्वारावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥२५२॥
आजगाम जनस्थानं मारीचेन दुरात्मना । सम्प्राप्य पञ्चवट्यां तु दशग्रीवः स राक्षसः॥२५३॥
मायाविना मारीचेन मृगरूपेण राक्षसः । अपहृत्याऽऽश्रमाद्दूरे तौ तु दशरथात्मजौ॥२५४॥

इस तरह से श्रीराम के द्वारा कहे जाने पर वह बिना किसी भय के निःशङ्क होकर बोली ॥२४०॥ **राक्षसी ने कहा—** मैं विश्रवा की पुत्री हूँ तथा रावण की बहन हूँ । तीनों लोकों में विख्यात मेरा नाम सूर्पणखा है ॥२४१॥ यह दण्डकारण्य है, इसे मेरे भाई ने मुझे दे दिया है । ऋषि समूह को खाती हुयी मैं इस महावन में विचरण करती हूँ ॥२४२॥ तुम मुनिश्वर को देखकर मैं कामार्त हो गयी हूँ । अतएव तुम्हारे साथ रमण करने की इच्छा से यहाँ निर्भय होकर मैं आयी हूँ । हे नृपश्रेष्ठ ! तुम मेरे पति हो जाओ । राजन् ! मैं तुम्हारी इस पत्नी सीता को खा लेती हूँ । वन में तथा प्रधान पर्वतों पर मैं तुम्हारे साथ विचरण करूँगी ॥२४३-२४५॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से सीताजी को खाने के लिए उद्यत होती हुयी उस राक्षसी को देखकर श्रीराम खड्ग उठाकर उसके नाक और कान को काट लिए ॥२४६॥ भयभीत होकर रोती हुयी वह विकृत राक्षसी खर के घर जाकर राम की चेष्टाओं को बतलायी ॥२४७॥ वह खर हजारों राक्षसों को लेकर दूषण और त्रिशिरा आदि के साथ श्रीराम से युद्ध करने के लिए शत्रुओं को मारने वाले श्रीराम के पास आया ॥२४८॥ श्रीरामचन्द्रजी काल के समान भयङ्कर बाणों से बिना किसी प्रयास के ही उन बड़े-बड़े आकार वाले राक्षसों को मार डाले ॥२४९॥ खर, त्रिशिरा तथा महाबलवान् दूषण को युद्ध में सर्पों के समान बाणों से मार डाले । सभी राक्षसों को मारकर दण्डकारण्य में रहने वाले देव समूह के द्वारा तथा महर्षियों के द्वारा पूजित होकर सीता और लक्ष्मणजी के साथ दण्डकारण्य में रहने लगे । राक्षसों का वध सुनकर क्रुद्ध होकर रावण जन स्थान में दुष्ट मारीच के साथ दण्डकारण्य में आया । पञ्चवटी में आकर वह रावण ॥२५०-२५३॥ मायावी तथा मृगरूप धारी मारीच के द्वारा वह रावण उस आश्रम से

जहार सीतां रामस्य भार्यां स्ववधकाङ्क्षया ।
ह्रियमाणां तु तां दृष्ट्वा जटायुर्गृध्रराड्बली ॥२५५॥
रामस्य सौहृदात्तत्र युयुधे तेन रक्षसा । तं हत्वा बाहुवीर्येण रावणः शत्रुचारणः॥२५६॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां राक्षसैर्बहुभिर्वृताम् । अशोकवनिकामध्ये निक्षिप्य जनकात्मजाम् ॥२५७॥
निधनं रामबाणेन काङ्क्षन्स्वगृहमाविशत्। रामस्तु राक्षसं हत्वा मारीचं मृगरूपिणम् ॥२५८॥
पुनराविश्य तत्राऽथ भ्रात्रासौमित्रिणाततः । राक्षसापहृतां भार्यांज्ञात्वा दशरथात्मजः ॥२५९॥
प्रभूतशोकसन्तप्तो विललाप महामतिः । मार्गमाणो वने सीतां पथि गृध्रं महाबलम् ॥२६०॥
विच्छिन्नपादपक्षं च पतितं धरणीतले । रुधिरापूर्णसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विस्मयमागतः॥२६१॥
पप्रच्छ राघवः श्रीमान्केन किं त्वं जिघांसितः ।
गृध्रस्तु राघवं दृष्ट्वा मन्दम्मन्दमुवाच ह ॥२६२॥

गृध्र उवाच

रावणेन हृता राम ! तव भार्या बलीयसा। तेन राक्षसमुख्येन सङ्ग्रामेनिहतोऽस्म्यहम् ॥२६३॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा राघवस्याग्रे सोऽभवत्त्यक्तजीवितः ।
संस्कारमकरोद्रामस्तस्य ब्रह्मविधानतः ॥२६४॥
स्वपदं च ददौ तस्मै योगिगम्यं सनातनम् । राघवस्य प्रसादेन स गृध्रः परमम्पदम् ॥२६५॥
हरेः सामान्यरूपेण मुक्तिं प्राप खगोत्तमः । माल्यवन्तं ततो गत्वामतङ्गस्याऽऽश्रमेशुभे ॥२६६॥

दूर रामजी और लक्ष्मणजी को ले जाकर ॥२५४॥ श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी सीताजी का अपना वध कराने के लिए अपहरण कर लिया । ले जायी जाती हुयी सीता को देखकर बलवान् गृध्रराज जटायु ॥२५५॥ राम के साथ मित्रता होने के कारण उस राक्षस के साथ युद्ध किए । अपनी भुजाओं के पराक्रम से शत्रु को मारने वाला रावण जटायु को मारकर ॥२५६॥ वहुत से राक्षसों से भरी हुयी अपनी नगरी लङ्का में चला गया । अशोक वन में सीताजी को रखकर श्रीराम के बाणों से अपना वध चाहते हुए अपने घर में चला गया । श्रीरामचन्द्रजी मृगरूप धारी मारीच को मारकर ॥२५७-२५८॥ फिर अपने आश्रम में अपने भाई लक्ष्मण के साथ आये । राक्षस के द्वारा अपहृत अपनी पत्नी को जान कर श्रीरामचन्द्रजी ॥२५९॥ शोक के कारण अत्यन्त संतप्त होकर विलाप करने लगे । सीताजी को खोजते हुए रास्ते में महाबलवान् कटे हुए पैर और पङ्ख वाले तथा पृथिवी पर गिरे हुए, जिनका सारा अङ्ग रुधिर से भिंगा हुआ था ऐसे महाबलवान् गृध्र को देखे । उसे देखकर वे आश्चर्यित हो गये ॥२६०-२६१॥ श्रीरामचन्द्रजी ने उससे पूछा कि किसने और किस लिए तुमको मारा है । श्रीरामजी को देखकर गृध्र धीरे-धीरे कहा ॥२६२॥ **गृध्र ने कहा—** हे राम ! बलवान् रावण ने आपकी पत्नी सीता का अपहरण किया है । उस राक्षस राज के द्वारा मैं युद्ध में मारा गया हूँ ॥२६३॥ **महेश्वर ने कहा—** श्रीराम के समक्ष यह कहकर वह गृध्र मर गया श्रीराम चन्द्रजी ने उसका दाह संस्कार ब्रह्ममेध विधि से किया ॥२६४॥ उन्होंने योगियों का प्राप्त होने वाले अपने लोक को उसे प्रदान किया । श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से वह गृध्र परम्पद में श्रीहरि के साम्य को प्राप्त कर लिया और उत्तम मुक्ति को प्राप्त कर लिया । वहाँ से श्रीरामजी माल्यवान् पर्वत पर जाकर महर्षि मतङ्ग

अभ्यगच्छन्महाभागां शबरीं धर्मचारिणीम् । सा तु भागवतश्रेष्ठा दृष्ट्वा तो रामलक्ष्मणौ॥२६७॥
प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य निवेश्यकुशविष्टरे । पादप्रक्षालनं कृत्वा वन्यैः पुष्पैः सुगन्धिभिः॥२६८॥
अर्चयामास भक्तया वै हर्षनिर्भरमानसा । फलानि च सुगन्धीनि मूलानि मधुराणि च॥२६९॥
निवेदयामास तदा राघवाभ्यांदृढव्रता । फलान्यास्वाद्य काकुत्स्थस्तस्यैमुक्तिंददौपराम्॥२७०॥
ततः क्रौञ्चवटीं गत्वा राघवः शत्रुसदूनः । जघान राक्षसं तत्र कबन्धं घोररूपिणम् ॥२७१॥
तं निहत्य महावीर्यो ददाह स्वर्गतश्च सः । ततो गोदावरीं गत्वा रामो राजीवलोचनः ॥२७२॥

पप्रच्छ सीतां गङ्गे ! त्वं कि तां जानासि मे प्रियाम् ।
न शशंस तदा तस्मै सा गङ्गा तमसावृता ॥२७३॥
शशाप राघवः क्रोधाद्रक्ततोया भवेति ताम् ।
ततो भयात्समुद्विग्ना पुरस्कृत्यमहामुनीन् ॥२७४॥

कृताञ्जलिपुटा दीना राघवं शरणं गता। ततो महर्षयस्सर्वे रामं प्राहुस्सनातनम्॥२७५॥

ऋषयऊचुः

त्वत्पादकमलोद्भूता गङ्गात्रैलोक्यपावनी । त्वमेव हि जगन्नाथ तां शापान्मोक्तुमर्हसि ॥२७६॥

महेश्वर उवाच

ततः प्रोवाच धर्मात्मा रामः शरणवत्सलः ॥२७७॥

राम उवाच

शबर्याः स्नानमात्रेण सङ्गता शुभवारिणा। मुक्ता भवतु मच्छापाद्गङ्गेयं पापनाशिनी॥२७८॥

के शुभ आश्रम में गये ॥२६५-२६६॥ वे महाभाग शबरी के आश्रम में गये । भागवत श्रेष्ठ वह श्रीराम लक्ष्मण को देखकर आगे से आकर उनको प्रणाम करके कुश के आसन पर उन्हें बैठायी । उनके दोनों चरणों को धोकर वनैले तथा सुगन्धित पुष्पों से ॥२६७-२६८॥ हर्ष से परिपूर्ण मन से उसने भक्ति पूर्वक पूजा की और सुगन्धित फलों और मधुर मूलों को ॥२६९॥ उन दोनों राम और लक्ष्मण को प्रदान की । उन फलों को खाकर श्रीरामजी ने उसको मुक्ति प्रदान किया ॥२७०॥ वहाँ से शत्रुओं को मारने वाले श्रीरामजी क्रौञ्चबती जाकर वहाँ भयङ्कर रूप वाले कबन्ध का वध किए ॥२७१॥ उसको मारकर श्रीराम ने उसको जला दिया जिसके कारण वह स्वर्ग चला गया । उसके बाद गोदावरी के तट पर राजीव लोचन श्रीरामचन्द्रजी ॥२७२॥ पूछे कि हे गङ्गे ! तुम मेरी प्रिया को जानती हो क्या ? तमोगुण व्याप्त वह गङ्गा उनसे कुछ नही बोली ॥२७३॥ उसके कारण श्रीरामचन्द्रजी ने उसको शाप दे दिया कि तुम लाल जलवाली हो जाओ । उसके पश्चात् भय से उद्विग्न होकर तथा मुनियों को आगे करके ॥२७४॥ हाथ जोड़कर दीन बनी हुयी गोदावरी श्रीरामचन्द्रजी की शरणागति की । उसके पश्चात् सभी महर्षिगण सनातन श्रीराम से कहे॥२७५॥ **ऋषियों ने कहा—** आपके चरणों से उद्भूत गङ्गा त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली है । आप जगत् के स्वामी हैं अतएव इसको आप शाप से मुक्त कर दें ॥२७६॥ **महेश्वर ने कहा—** उसके पाश्चात् धर्मात्मा एवं शरणागत वत्सल श्रीरामचन्द्रजी कहे ॥२७७॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** शबरी के स्नान करने मात्र से उसके द्वारा स्पृष्ट शुभजल ये सह पापनाशिनी गङ्गा मेरे शाप से मुक्त हो जाय ॥२७८॥ इस

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः शबरीतीर्थमुत्तमम्। गङ्गया सङ्गतं चक्रेशार्ङ्गकोट्यामहाबलः ॥२७९॥
महाभागवतानां च तीर्थं यस्योदरेऽभवत्। तच्छरीरं जगद्वन्द्यंभविष्यति न संशयः ॥२८०॥
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थ ऋष्यमूकं गिरिं ययौ ।
ततः पम्पासरस्तीरे वानरेण हनूमता ॥२८१॥
संगतस्तस्य वचनात्सुग्रीवेण समागतः। सुग्रीववचनाद्धत्वा बालिनं वानरेश्वरम् ॥२८२॥
सुग्रीवमेव तद्राज्ये रामोऽसावभ्यषेचयत्। स तु सम्प्रेषयामासदिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥२८३॥
हनुमत्प्रमुखान्वीरान्वानरान्वानराधिपः । स लङ्घयित्वा जलधिं हनूमान्मारुतात्मजः ॥२८४॥
प्रविश्य नगरीं लङ्कां दृष्ट्वा सीतां दृढव्रताम् ।
उपवासकृशांदीनांभृशंशोकपरायणाम् ॥२८५॥
मलपङ्केनदिग्धाङ्गीं मलिनाम्बरधारिणीम्। निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिंच निवेद्यताम् ॥२८६॥
सप्तमन्त्रिसुतांस्तत्र रावणस्य सुतन्तथा। तोरणास्तम्भमुत्पाट्य निजघान स्वयं कपिः ॥२८७॥
समाश्वास्यच वैदेहीं बभञ्जोपवनं तदा। वनपालान्किङ्करांश्च पञ्चसेनाग्रनायकान् ॥२८८॥
रावणस्य सुतेनाऽथ निगृहीतो यदृच्छया। दृष्ट्वा च राक्षसेन्द्रन्तु सम्भाष्य तु तथैव च॥२८९॥
ददाह नगरीं लङ्कां स्वलाङ्गूलाग्निना कपिः। तया दत्तमभिज्ञानं गृहीत्वा पुनरागमत् ॥२९०॥
सोऽभिगम्य महातेजा रामं कमललोचनम्। न्यवेदयद्वानरेन्द्रो दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥२९१॥
सुग्रीवसहितो रामो वानरैर्बहुभिर्वृतः। महोदधेस्तटं गत्वा तत्राऽनीकं न्यवेशयत्॥२९२॥

तरह से कहकर श्रीरामचन्द्रजी उत्तम शबरी तीर्थ को गङ्गा से अपने धनुष के अग्रभाग को मिला दिए।।२७९।। जिसके भीतर महाभागवतों का तीर्थ हुआ वह शरीर जगत्वन्द्य होगा इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥२८०॥ इस तरह से कहकर श्रीरामचन्द्रजी ऋष्यमूक पर्वत पर गये । वहाँ पम्पा सरोवर के तट पर हनुमान नामक वानर ॥२८१॥ द्वारा कहे जाने पर वे सुग्रीव से मिले । सुग्रीव के कहने से वानरों के स्वामी बाली को मारकर श्रीरामचन्द्रजी ॥२८२॥ सुग्रीव को ही उसके राज्य पर अभिषिक्त कर दिए । जानकीजी को देखने की इच्छा से सुग्रीव ने ॥२८३॥ हनुमान् आदि वानरों को उनका पता लगाने के लिए भेजा । मारुतात्मज हनुमान्जी समुद्र पार करके ॥२८४॥ लङ्का नगरी में प्रवेश करके दृढव्रत करने वाली तथा उपवास करने के कारण दुबली पतली, दीन तथा अत्यधिक शोक संतप्त मलरूपी कीचड़ से मलीन शरीर वाली मलिन वस्त्र को धारण करने वाली सीताजी को देखकर उनको अभिज्ञान प्रदान करके उनको सारा उद्योग बतलाकर ॥२८५-२८६॥ कपि ने मन्त्रियों को सात पुत्रों, तथा रावण के पुत्र अक्षय कुमार को तोरण के स्तम्भ को उखाड़कर मार दिया ॥२८७॥ सीताजी को आश्वासन प्रदान करके उपवन को उन्होंने नष्ट भ्रष्ट कर दिया । वन की रक्षा करने वाले किंकरों तथा सेना के पाँच अग्रनायकों को भी उन्होंने मार दिया॥२८८॥ उसके बाद रावण के पुत्र ने उनको अचानक निगृहीत कर लिया । रावण को देखकर उसके साथ बातें करके॥२८९॥ हनुमानजी ने अपनी पूंछ की अग्नि से लङ्का नगरी को जला दिया । फिर सीताजी के द्वारा दिए गये अभिज्ञान (पहचान) को लेकर वे फिर लौट आये ॥२९०॥ वे महातेजस्वी कमलनयन भगवान श्रीराम के पास जाकर उनसे कहे कि मैंने सीताजी को देख लिया है ॥२९१॥ सुग्रीव के साथ श्रीरामचन्द्रजी

रावणस्याऽनुजोभ्राता विभीषणइतीरितः। धर्मात्मा सत्यसन्धश्च महाभागवतोत्तमः ॥२९३॥
ज्ञात्वा समागतं रामं परित्यज्य स्वपूर्वजम्। राज्यं सुतांश्चदारांश्च राघवं शरणंययौ ॥२९४॥
परिगृह्य च तं रामो मारुतेर्वचनात्प्रभुः। तस्मैदत्त्वाऽभयंसौम्यं रक्षोराज्येऽभ्यषेचयत्॥२९५॥
ततस्समुद्रं काकुत्स्थस्तर्तुकामः प्रपद्य वै। सुप्रसन्नजलं तं तु दृष्ट्वा रामो महाबलः ॥२९६॥
शार्ङ्गमादायबाणोघैः शोषयामास वारिधिम्। ततस्तु सरितामीशः काकुत्स्थं करुणानिधिम्॥२९७॥
प्रपद्य शरणं देवमर्चयामास वारिधिः। पुनरापूर्य जलधिं वरुणास्त्रेण राघवः ॥२९८॥
उदधेर्वचनात्सेतुं सागरे मकरालये। गिरिभिर्वानरानीतैर्नलं सेतुमकारयत् ॥२९९॥
ततो गत्वा पुरींलङ्कां सन्निवेश्य महाबलम्। सम्यगायोधनं चक्रे वानराणांचरक्षसाम् ॥३००॥
ततो दशास्यतनयः शक्रजिद्राक्षसो बली। बबन्ध नागपाशैश्च तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥३०१॥
वैनतेयः समागत्य तान्यस्त्राणि प्रमोचयत्। राक्षसा निहतास्सर्वे वानरैश्च महाबलैः ॥३०२॥
रावणस्याऽनुजं वीरं कुम्भकर्णं महाबलम्। निजघान रणे रामो बाणैरग्निशिखोपमैः ॥३०३॥
ब्रह्मास्त्रेणेन्द्रजित्क्रुद्धः पातयामास वानरान्। हनूमता समानीतो महौषधिमहीधरः ॥३०४॥
तस्यानीतस्य च स्पर्शात्सर्वएव समुत्थिताः। ततो रामानुजो वीरः शक्रजेतारमाहवे ॥३०५॥
निपातयामास शरैर्वृत्रं वज्रधरो यथा। निर्ययावथ पौलस्त्यो योद्धं रामेण संयुगे ॥३०६॥
चतुरङ्गबलैः सार्द्धं मन्त्रिभिश्च महाबलः। समन्ततोऽभवद्युद्धं वानराणांच रक्षसाम् ॥३०७॥
रामरावणयोश्चैव तथा सौमित्रिणा सह। शक्त्या निपातयामास लक्ष्मणं राक्षसेश्वरः ॥३०८॥

अनेक वानरों के साथ महासमुद्र के तट पर जाकर वहाँ सेना को ठहराये ॥२९२॥ रावण का छोटा भाई जिसका नाम विभीषण था वह धर्मात्मा, सत्यवक्ता और उत्तम महाभागवत था ॥२९३॥ वह आये हुए श्रीरामचन्द्रजी को जानकर अपने बड़े भाई को तथा राज्य पुत्र तथा पत्नी का त्याग करके श्रीरामचन्द्रजी के शरण में आये ॥२९४॥ श्रीरामजी हनुमानजी के कहने से उनको अपनाकर उनको अभय प्रदान किए और राक्षस के राजपद पर अभिषिक्त कर दिए ॥२९५॥ उसके बाद समुद्र को पार करने की इच्छा से उन्होंने समुद्र की शरणागति किए। फिर भी स्वच्छ जल वाले समुद्र को देखकर महाबलवान् श्रीराम अपना शार्ङ्ग धनुष उठाकर बाण समूह से समुद्र को सुखाने लगे। उसके वाद समुद्र ने करुणा सागर ने श्रीराम की ॥२९६-२९७॥ शरणागति की। फिर भी राम ने वरुणास्त्र से समुद्र को भर दिया ॥२९८॥ समुद्र के कहने से समुद्र पर वानरों के द्वारा लाये गये पर्वतों से नल ने सेतु का निर्माण किया ॥२९९॥ उसके वाद लङ्कापुरी में जाकर वहाँ सेना को रखकर वानरों और राक्षसों के वीच भयङ्कर युद्ध हुआ ॥३००॥ उसके वाद रावण के पुत्र इन्द्रजीत ने नागपाश से राम और लक्ष्मण को वाँध दिया ॥३०१॥ गरुड़ आकर उनको अस्त्रों से मुक्त किये। महावलवान् वानरों ने सभी राक्षसों को मार दिया ॥३०२॥ रावण के छोटे भाई कुम्भकर्ण को श्रीरामचन्द्र ने अग्नि शिखा के समान वाणों से मार दिया ॥३०३॥ क्रुद्ध होकर इन्द्रजित् ने ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से वानरों को गिरा दिया। हनुमानजी महौषधियों के पर्वत को लाये ॥३०४॥ उसके स्पर्श मात्र से सबके सव खड़े हो गये। उसके पश्चात् लक्ष्मणजी ने इन्द्रजीत को युद्ध में वाणों से मारकर उसी तरह से गिरा दिया जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर को मार दिया था। उसके पश्चात् रावण श्रीरामचन्द्रजी से युद्ध

ततःक्रुद्धो महातेजा राघवो राक्षसान्तकः। जघान राक्षसान्वीराञ्छरैः कालान्तकोपमैः ॥३०९॥
प्रदीप्तैर्बाणसाहस्त्रैः कालदण्डोपमैर्भृशम्। छादयामास काकुत्स्थो दशग्रीवंचरक्षसम् ॥३१०॥
स तु निर्भिन्नसर्वाङ्गो राघवास्त्रैर्निशाचरः । भयात्प्रदुद्राव रणाल्लङ्काम्प्रतिनिशाचरः ॥३११॥
जगद्राममयं पश्यन्निर्वेदाद्गृहमाविशत् । ततो हनूमता नीतो महौषधिमहागिरिः ॥३१२॥
तेन रामानुजस्तूर्णं लब्धसञ्ज्ञोऽभवत्तदा । दशग्रीवस्ततो होममारेभे जयकाङ्क्षया ॥३१३॥
ध्वंसितं वानरेन्द्रैस्तदभिचारात्मकं रिपोः। पुनर्युद्धाय पौलस्त्यो रामेण सह निर्ययौ ॥३१४॥
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य राक्षसैर्बहुभिर्युतः । ततः शतमखो दिव्यं रथं हर्यश्वसंयुतम् ॥३१५॥
राघवाय ससूतं हि प्रेषयामास बुद्धिमान् । रथं मातलिनाऽऽनीतं समारुह्य रघूत्तमः ॥३१६॥
स्तूयमानःसुरगणैर्युयुधे तेन रक्षसा । ततो युद्धमभूद्घोरं रामरावणयोर्महत् ॥३१७॥
सप्ताहिकमहोरात्रं शस्त्रास्त्रैरतिभीषणम्। विमानस्थाः सुरास्सर्वे ददृशुस्तत्र संयुगम् ॥३१८॥
दशग्रीवस्य चिच्छेद शिरांसि रघुसत्तमः। समुत्थितानि बहुशो वरदानात्कपर्दिनः ॥३१९॥
ब्राह्ममस्त्रं महारौद्रं वधायाऽस्य दुरात्मनः । ससर्ज राघवस्तूर्णं कालाग्निसदृशप्रभम् ॥३२०॥
तदस्त्रं राघवोत्सृष्टंरावणस्य स्तनान्तरम् । विदार्य धरणीं भित्त्वा रसातलतले गतम् ॥३२१॥
सम्पूज्यमानं भुजगैराघवस्य करं ययौ। सगतासुर्महादैत्यः पपात च ममार च ॥३२२॥

करने के लिए ॥३०५-३०६॥ चतुरङ्गिर्णी सेनाओं और मन्त्रियों के साथ वह निकला राक्षसों और वानरों का भयङ्कर युद्ध हुआ ॥३०७॥ राम और लक्ष्मण के साथ रावण का युद्ध हुआ । रावण ने शक्ति के द्वारा लक्ष्मणजी को मारकर गिरा दिया । उसके बाद क्रुद्ध होकर महातेजस्वी श्रीराम राक्षस वीरों को कालान्तर के समान वाणों से मार दिए ॥३०८-३०९॥ जलते हुए हजारो वाणों से जो कालदण्ड के समान थे उनसे श्रीरामचन्द्रजी ने रावण को ढंक दिया ॥३१०॥ वह राक्षस सम्पूर्ण अङ्गों के राम के अस्त्रों से छिद जाने के कारण भयभीत होकर लङ्का में भाग गया । निर्वेद के कारण सम्पूर्ण जगत् को राममय देखता हुआ वह लङ्का में प्रवेश कर गया ॥३११॥ उसके पश्चात् हनुमानजी द्वारा महौषधि पर्वत लाया गया ॥३१२॥ लक्ष्मणजी शीघ्र ही संज्ञा प्राप्त कर लिए । उसके बाद विजय प्राप्त करने के लिए रावण होम करना प्रारम्भ किया ॥३१३॥ वानरों ने उसके उस अभिचार कर्म को ध्वस्त कर दिया । फिर रावण राम के साथ युद्ध करने के लिए ॥३१४॥ दिव्य रथ पर बैठकर और बहुत अधिक राक्षसों के साथ निकला । उस समय इन्द्र ने हर्यश्व से युक्त दिव्य रथ ॥३१५॥ को सारथि के साथ श्रीरामजी के लिए भेजा । मातलि के द्वारा लाये गये रथ पर बैठकर श्रीरामचन्द्रजी ॥३१६॥ देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए उस राक्षस के साथ युद्ध किए । उसके बाद राम और रावण का भयङ्कर युद्ध हुआ ॥३१७॥ सात दिन तक दिन रात शस्त्रास्त्रों से भयङ्कर युद्ध चलता रहा । विमान पर चढ़े हुए सभी देवता उस युद्ध को देख रहे थे ॥३१८॥ श्रीरामचन्द्रजी ने रावण के शिरों को बहुत बार काट दिया किन्तु शिवजी के वरदान के कारण फिर उसके नए शिर निकल आते थे ॥३१९॥ रावण का वध करने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ने कालाग्नि के समान ब्रह्मास्त्र का संधान किया ॥३२०॥ वह अस्त्र रावण के हृदय को छेदकर पृथिवी का भेदन करके रसातल में चला गया॥३२१॥ सर्पो द्वारा श्रीराम के हाथों को पूजित होकर वह रसातल मे चला गया । प्राणों के निकल

ततोदेवगणास्सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः। ववृषुः पुष्पवर्षाणि महात्मनि जगद्गुरौ ॥३२३॥
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः। ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः॥३२४॥
तुष्टुवुर्मुनयः सिद्धा देवगन्धर्वकिन्नराः। लङ्कायां राक्षसश्रेष्ठमभिषिच्य विभीषणम् ॥३२५॥
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने रघुकुलोत्तमः। रामस्तत्राऽब्रवीद्वाक्यमभिषिच्यविभीषणम् ॥३२६॥

राम उवाच

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी। यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं विभीषणे॥३२७॥
गत्वा मम पदं दिव्यं योगिगम्यं सनातनम्। सपुत्रपौत्रः सगणः सम्प्राप्नुहिमहाबल ! ॥३२८॥

ईश्वर उवाच

एवं नत्त्वा वरं तस्मै राक्षसाय महाबलः। सम्प्राप्य मैथिलीं तत्र पुरुषं जनसंसदि ॥३२९॥
उवाच राघवः सीतां गर्हितं वचनं बहु। सा तेन गर्हितासाध्वी विवेश चाऽनलं महत्॥३३०॥
ततो देवगणास्सर्वे शिवब्रह्मपुरोगमाः। दृष्ट्वा तु मातरं वह्नौ प्रविशन्तीं भयातुराः॥
समागम्य रघुश्रेष्ठं सर्वे प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥३३१॥

देवाऊचुः

राम ! राम ! महाबाहो ! शृणु त्वं चाऽतिविक्रम ! ।
सीताऽतिविमला साध्वी तव नित्याऽनपायिनी ॥३३२॥
अनन्या हि त्वया सा तु भास्करेण प्रभायथा ।
सेयं लोकहितार्थाय समुत्पन्नामहीतले ॥३३३॥
माता सर्वस्य जगतः समस्तजगदाश्रया। रावणः कुम्भकर्णश्च भृत्यौ पूर्वपरायणौ॥३३४॥

जाने से वह दैत्य गिर पड़ा और मर गया ॥३२२॥ उसके पश्चात् देवताओं ने हर्षित मन से श्रीभगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ॥३२३॥ गन्धर्वों ने गीत गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया। पवित्र हवा बहने लगी और सूर्य की प्रभा सुन्दर हो गयी ॥३२४॥ मुनियों, सिद्धों, देवताओं, गन्धर्वों तथा किन्नरों ने स्तुति की। लङ्का में राक्षस श्रेष्ठ विभीषण अभिषिक्त करके ॥३२५॥ रघुकुलोत्तम श्रीरामचन्द्रजी अपने को कृतकृत्य माने। श्रीरामचन्द्रजी वहाँ पर विभीषण को अभिषिक्त करके कहे ॥३२६॥ **रामजी ने कहा—** जब तक सूर्य, चन्द्रमा और पृथिवी हैं। जब तक मेरी कथा संसार में होगी और विभीषण का राज्य होगा॥३२७॥ उसके बाद अपने पुत्रों, पौत्रों और गणों के साथ योगिगम्य मेरे दिव्य धाम में जाकर उसे प्राप्त करेंगे ॥३२८॥ **ईश्वर ने कहा—** इस तरह से विभीषण को वरदान देकर महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताजी को प्राप्त करके उस जन समूह में उन्होंने उन्हें कठोर वाणी कहा ॥३२९॥ श्रीराम ने सीताजी को बहुत सी निन्दित बातें कहा। उनके द्वारा निन्दित वे साध्वी अग्नि में प्रवेश कर गयीं ॥३३०॥ उसके पश्चात् सभी शिव ब्रह्मा आदि सीता माता को अग्नि में प्रवेश करती हुयी देखकर भयभीत हो गये। सबके सब श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर हाथ जोड़कर कहे ॥३३१॥ **देवताओं ने कहा—** हे अनन्त पराक्रम सम्पन्न महाबाहो आप हमलोगों की बात सुनें सीताजी अत्यन्त विमल हैं और आपसे कभी अलग होने वाली नहीं हैं ॥३३२॥ वे सूर्य की प्रभा के समान आपसे अनन्य हैं लोक कल्याण करने के लिए वे

शापात्तौ सनकादीनां समुत्पन्नौ महीतले। तयोर्विमुक्तये वैदेही गृहीता दण्डके वने ॥३३५॥
तावुभौ वै वधं प्राप्तो त्वया राक्षसपुङ्गवौ । तौ विमुक्तौ दिवं यातौ पुत्रपौत्रसहानुगौ ॥३३६॥

त्वं विष्णुस्त्वं परं ब्रह्म योगिध्येयः सनातनः ।
त्वमेव सर्वदेवानामनादिनिधनोऽव्ययः ॥३३७॥
त्वं हि नारायणः श्रीमान्सीता लक्ष्मीःसनातनी ।
माता सा सर्वलोकानां पिता त्वं परमेश्वर ! ॥३३८॥

नित्यैवैषा जगन्माता तव नित्याऽनपायिनी । यथा सर्वगतस्त्वं हि तथा चेयं रघूत्तम ! ॥३३९॥

तस्माच्छुद्धसमाचारां सीतां साध्वीं दृढव्रताम् ।
गृहाण सौम्य ! काकुत्स्थ ! क्षीराबधेरिव माचिरम् ॥३४०॥

ईश्वर उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र लोकसाक्षी स पावकः। आदाय सीतां रामाय प्रददौ सुरसन्निधौ ॥
अब्रवीत्तत्र काकुत्स्थं वह्निः सर्वशरीरगः ॥३४१॥

वह्निरूवाच

इयंशुद्धसमाचारा सीतानिष्कल्मषाविभो ! । गृहाणमाचिरं राम ! सत्यं सत्यं तथा ब्रवम्॥३४२॥

ईश्वर उवाच

ततोऽग्निवचनात्सीतां परिगृह्य रघूद्वहः । बभूव रामः संहृष्टः पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥३४३॥
राक्षसैर्निहता ये तु सङ्ग्रामे वानरोत्तमाः । पितामहवरात्तूर्णं जीवमानाः समुत्थिताः॥३४४॥
ततस्तु पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसन्निभम् । भ्रात्रा गृहीतं सङ्ग्रामे कौबेरं राक्षसेश्वरः ॥३४५॥

पृथिवी से उत्पन्न हुयीं ॥३३३॥ सम्पूर्ण जगत् की माता जगदाश्रय हैं । रावण और कुम्भकर्ण आपके भक्त पूर्व जन्म में थे ॥३३४॥ वे दोनों सनकादिक के शाप से पृथिवी पर उत्पन्न हुए थे । वे दोनों राक्षस श्रेष्ठ आपके धाम में जाकर उन दोनों को मुक्ति के लिए सीताजी दण्डकारण्य में रावण के द्वारा अपहत हुयीं। मुक्त होकर अपने पुत्रों, पौत्रों तथा अनुचरों के साथ वे दोनों स्वर्ग चले गये ॥३३५-३३६॥ आप योगिध्येय सनातन ब्रह्म भगवान् विष्णु हैं । आप ही सभी देवों में अनादि निधन हैं और अव्यय है ॥३३७॥ आप हीं नारायण हैं और सीताजी सनातनी लक्ष्मी हैं । वे सम्पूर्ण जगत् की माता हैं आप परमेश्वर और जगत् के पिता हैं ॥३३८॥ ये जगत् की माता हैं, आपकी नित्य ही अनपायिनी हैं । हे रघूत्तम जैसे आप सर्व व्यापक हैं वैसे ही ये भी सर्वत्र व्यापक हैं ॥३३९॥ अतएव शुद्ध आचरण वाली दृढव्रता सीताजी साध्वी हैं । हे काकुत्स्थ ! आप इनको क्षीर सागर के समान शीघ्र स्वीकार करें ॥३४०॥ **ईश्वर ने कहा—** उसी समय लोक साक्षी अग्नि सीता को लेकर देवताओं के सामने ही श्रीरामजी को प्रदान किए और उन्होंने श्रीरामजी से सर्वशरीर गत अग्नि ने कहा ॥३४१॥ **अग्नि ने कहा—** हे विभो ! शुद्धाचार वाली ये सीताजी निष्पाप हैं । इनको आप शीघ्र स्वीकार करें यह मैंने परम सत्य कहा है ॥३४२॥ **ईश्वर ने कहा—** उसके बाद अग्नि के कहने से श्रीरामजी सीताजी को स्वीकार करके प्रसन्न हुए और देवताओं ने उनकी पूजा की ॥३४३॥ जिन वानरों को राक्षसों ने मार दिया था वे सब ब्रह्माजी के वरदान से शीघ्र जीवित होकर खड़े हो गये ॥३४४॥ उसके बाद सूर्य के समान कान्तिमान पुष्पक नामक विमान जिसको

तद्राघवाय प्रददौ वस्त्राण्याभरणानि च । तेन सम्पूजितः श्रीमाञ्रामचन्द्रः प्रतापवान् ॥३४६॥
आरुरोह विमानाग्र्यं वैदेह्या भार्यया सह । लक्ष्मणेन च शूरेण भ्रात्रा दशरथात्मजः ॥३४७॥
ऋक्षवानरसङ्घातैः सुग्रीवेण महात्मना । विभीषणेन शूरेण राक्षसैश्च महाबलैः ॥३४८॥
यथा विमाने वैकुण्ठे नित्यमुक्तैर्महात्मभिः । तथा सर्वैः समारुह्य ऋक्षवानरराक्षसैः ॥३४९॥
अयोध्यांप्रस्थितो रामःस्तूयमानः सुरोत्तमैः । भरद्वाजाश्रमंगत्वा रामः सत्यपराक्रमः ॥३५०॥
भरतस्याऽन्तिकेतत्र हनूमन्तं व्यसर्जयत् । स निषादालयं गत्वागुहं दृष्ट्वाऽथ वैष्णवम्॥३५१॥
राघवागनमं तस्मै प्राह वानरपुङ्गवः । नन्दिग्रामं ततो गत्वा दृष्ट्वा तं राघवानुजम्॥३५२॥
न्यवेदयत्तथा तस्मै रामस्याऽगमनोत्सवम् । भरतश्चाऽगतंश्रुत्वा वानरेण रघूत्तमम् ॥३५३॥
प्रहर्षमतुलं लेभे सानुजः ससुहृज्जनः । पुनरागत्य काकुत्स्थं हनूमान्मारुतात्मजः ॥३५४॥
सर्वं शशंस रामाय भरतस्य च वर्तनम् । राघवस्तु विमानाग्र्यादवरुह्य सहाऽनुजः ॥३५५॥
ववन्दे भार्यया सार्द्धं भरद्वाजं तपोनिधिम् । स तु सम्पूजयामास काकुत्स्थं सानुजं मुनिः॥३५६॥
पक्वान्नैः फलमूलाद्यैर्वस्त्रैराभरणैरपि। तेन सम्पूजितस्तत्र प्रणम्य मुनिसत्तमम् ॥३५७॥
अनुज्ञातः समारुह्य पुष्पकं सानुगस्तदा । नन्दिग्रामं ययौ रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥३५८॥
मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च सानुजः केकयीसुतः ।
प्रत्युद्ययौ नृपवरैः सबलैः पूर्वजं मुदा ॥३५९॥
सम्प्राप्य रघुशार्दूलं ववन्दे सोऽनुगैर्वृतः। पुष्पकादवरुह्याऽथ राघवः शत्रुतापनः ॥३६०॥

रावण ने कुबेर को जीतकर ले लिया था ॥३४५॥ विभीषणजी ने श्रीरामजी को उसे दे दिया तथा वस्त्रों एवं आभूषणों को प्रदान किया । उनके द्वारा पूजित होकर प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी ॥३४६॥ उस श्रेष्ठ विमान पर अपनी पत्नी सीताजी के साथ बैठे तथा भाई लक्ष्मणजी के साथ बैठे ॥३४७॥ ऋक्षों तथा वानरों के समूह के साथ महात्मा सुग्रीव, शूरवीर विभीषण और महावलवान राक्षसों के साथ बैठे ॥३४८॥ जिस तरह वैकुण्ठ में नित्य मुक्त तथा माहात्माओं के साथ भगवान् बैठते हैं वैसे ही सभी ऋक्ष, वानर तथा राक्षसों के साथ वे बैठे ॥३४९॥ श्रेष्ठ देवताओं द्वारा स्तुति किये जाते हुए श्रीरामजी अयोध्या के लिए प्रस्थान किए । भरद्वाजाश्रम में जाकर सत्य पराक्रम श्रीरामजी ॥३५०॥ भरतजी के सन्निकट हनुमानजी को भेजे । वे निषाद के घर जाकर और वैष्णव गुह को देखकर ॥३५१॥ हनुमानजी भरतजी को श्रीरामगमन का समाचार नन्दी ग्राम में जाकर और भरतजी का दर्शन करके दिए । उन वानरेन्द्र के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी के आगमन को सुनकर ॥३५२-३५३॥ भरतजी अपने सुहृदों के साथ अत्यन्त प्रसन्न हुए । फिर हनुमान् जी श्रीरामजी के पास आकर ॥३५४॥ भरतजी के व्यवहार को पूर्ण रूप से वतलाये । श्रीरामजी उस श्रेष्ठ विमान से अपने अनुज के साथ उतरकर अपनी पत्नी के साथ महर्षि भरद्वाज की वन्दना किए । वे मुनि भी सानुज श्रीरामजी की पूजा किए ॥३५५-३५६॥ पके हुए अन्न, फल-मूल आदि वस्त्र तथा आभूषणों से उनके द्वारा पूजित होकर मुनि को प्रणाम करके ॥३५७॥ उनसे आज्ञा प्राप्त करके अपने अनुचरों के साथ पुष्पक विमान पर चढ़कर अपने सुहृदों के साथ श्रीभगवान् नन्दीग्राम गये ॥३५८॥ मन्त्रियों, मुख्य नागरिकों और शत्रुघ्नजी के साथ कैकेयी पुत्र श्रीभरतजी श्रेष्ठ राजाओं के साथ आगे से आकर अपने बड़े

भरतं चैव शत्रुघ्नमुपसम्परिषस्वजे । पुरोहितं वसिष्ठं च मातृवृद्धांश्च बान्धवान् ॥३६१॥
प्रणनाम महातेजाः सीतया लक्ष्मणेन च । विभीषणंच सुग्रीवं जाम्बवन्तं तथाऽङ्गदम् ॥३६२॥
हनुमन्तं सुषेणं च भरतःपरिषस्वजे। भ्रातृभिः सानुगैस्तत्र मङ्गलस्नानपूर्वकम् ॥३६३॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः। आरुरोह रथं दिव्यं सुमन्त्राधिष्ठितं शुभम् ॥३६४॥
संस्तूयमानस्त्रिदशैर्वैदेह्या लक्ष्मणेन च। भरतश्चैव सुग्रीवः शत्रुघ्नश्च विभीषणः॥३६५॥
अङ्गदश्च सुषेणश्च जाम्बवान्मारुतात्मजः । नीलो नलश्च सुभगः शरभो गन्धमादनः ॥३६६॥
अन्ये च कपयः शूरा निषादाधिपतिर्गुहः। राक्षसाश्च महावीर्याः पार्थिवेन्द्रा महाबलाः ॥३६७॥
गजानश्वान्रथान्सम्यगारुह्य वहुशः शुभान् । नानामङ्गलवादित्रैः स्तुतिभिः पुष्कलैस्तथा॥३६८॥
ऋक्षवानररक्षोभिर्निषादवरसैनिकैः । प्रविवेश महातेजाः साकेतं पुरमव्ययम्॥३६९॥

आलोक्य राजनगरीं पथि राजपुत्रो राजानमेव पितरं परिचिन्तयानः ।
सुग्रीवमारुतिविभीषणपुण्यपादसञ्चारपूतभवनं प्रविवेश रामः ॥३७०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे रामस्याऽयोध्याप्रवेशो नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥
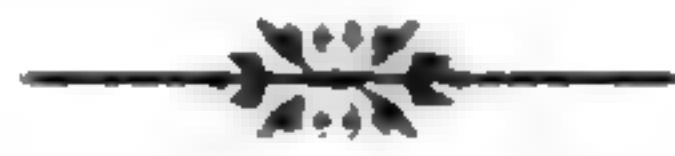
भाई को प्रेम पूर्वक प्राप्त करके अनुचरों के साथ उनकी वन्दना किए । उसके बाद शत्रुओं को संतप्त करने वाले श्रीरामजी पुष्पक विमान से उतर कर ॥३५९-३६०॥ भरतजी तथा शत्रुघ्नजी को अपने गले से लगाये पुरोहित वसिष्ठजी तथा वृद्ध माताओं के एवं बन्धुओं को महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ प्रणाम किए । विभीषण, सुग्रीव, जाम्ववान, अङ्गद, हनुमान तथा सुषेणजी का भरतजी ने आलिङ्गन किया । भ्राताओं और अनुचरों के साथ वहाँ पर मङ्गल स्नान करके ॥३६१-३६३॥ दिव्यमाला और वस्त्र धारण करके तथा दिव्य चन्दन लगाकर श्रीभगवान् सुमन्त्र के द्वारा अधिष्ठित दिव्य रथ पर चढ़े॥३६४॥ उस समय देवता उनकी स्तुति कर रहे थे सीता और लक्ष्मणजी के साथ भरत सुग्रीव, शत्रुघ्न तथा विभीषण, अङ्गद, सुषेण, जाम्ववान, हनुमान, नील, नल, सुभग, शरभ, गन्धमादन तथा दूसरे वानर वीर निषादाधिपति गुह, महापराक्रमी राक्षसगण और महाबलवान राजागण ॥३६५-३६७॥ हाथी, घोड़े तथा रथ पर अच्छी तरह से चढ़कर अनेक शुभों अनेक प्रकार के वाद्यो तथा बहुत अधिक स्तुतियों द्वारा॥३६८॥ ऋक्ष, वानर, राक्षस, श्रेष्ठ निषाद तथा श्रेष्ठ सैनिकों के साथ महातेजस्वी श्रीभगवान् अव्यय साकेत नगरी में प्रवेश किए । राजा की नगरी को देखकर राजकुमार अपने पिता को चिन्तन करते हुए सुग्रीव, हनुमान, विभीषण एवं श्रीरामचन्द्रजी अपने पूज्यपाद पिता के भवन में प्रवेश किये ॥३६९-३७०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीरामचन्द्रजी के अयोध्या में प्रवेश नामक दो सौ बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४२।।

दो सौ तिरालिसवाँ अध्याय

शङ्कर उवाच

अथ तस्मिन्दिने पुण्ये शुभलग्ने शुभान्विते ।
राघवस्याऽभिषेकार्थं मङ्गलं चक्रिरेजनाः ॥१॥
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः। मार्कण्डेयश्च मौद्गल्यः पर्वतो नारदस्तथा ॥२॥
एते महर्षयस्तत्र जपहोमपुरस्सरम्। अभिषेकं शुभं चक्रुर्मुनयो राजसत्तमम्॥३॥
नानारत्नमये दिव्ये हेमपीठे शुभान्विते। निवेश्य सीतया सार्द्धं श्रिया इव जनार्दनम् ॥४॥
सौवर्णकलशैर्दिव्यैर्नानारत्नमयैः शुभैः । सर्वतीर्थोदकैः पुण्यैर्माङ्गल्यद्रव्यसंयुतैः ॥५॥
दूर्वाग्रतुलसीपत्रपुष्पगन्धसमन्वितैः । मन्त्रपूतजलैः शुद्धैर्मुनयः संशितव्रताः॥६॥
अजपन्वैष्णवान्सूक्तांश्चतुर्वदमयाञ्छुभान् । अभिषेकंशुभं चक्रुः काकुत्स्थं जगताम्पतिम् ॥७॥
तस्मिञ्छुभतमे लग्ने देवदुन्दुभयो दिवि। विनेदुः पुष्पवर्षाणि ववृपुश्च समन्ततः ॥८॥
दिव्याम्बरैर्भूषणैश्च दिव्यगन्धानुलेपनैः । पुष्पैर्नानाविधैर्दिव्यैर्देव्या सह रघूद्वहः ॥९॥
अलङ्कृतश्च शुशुभे मुनिर्भिर्वेदपारगैः। छत्रं च चामरं दिव्यं धृतवाल्लिक्ष्मणस्तदा ॥१०॥
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तौ विवीजतुः। दर्पणं प्रददौ श्रीमान्राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥११॥
दधार पूर्णकलशं सुग्रीवो वानरेश्वरः। जाम्बवांश्च महातेजाः पुष्पमालां मनोहराम्॥१२॥
वालिपुत्रस्तु ताम्बूलं सकर्पूरं ददौ हरेः। हनुमान्दीपिकांदिव्यां सुषेणश्च ध्वजं शुभम्॥१३॥

रामाभिषेक पूर्वक श्रीरामजी का दर्शन करने के लिए शङ्करजी के साथ देवताओं का आना, विश्वरूप का दर्शन, शिवजी द्वारा सीतारामजी की स्तुति और उसके फल का वर्णन

शङ्करजी ने कहा— उसके बाद पवित्र शुभ लग्न से युक्त उसी दिन लोगों ने श्रीरामचन्द्रजी का अभिषेक करने के लिए मङ्गल किया ॥१॥ वसिष्ठ वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय, मौदगल्य, पर्वत और नारदजी ॥२॥ ये सभी महर्षि वहाँ पर जप तथा होम पूर्वक मुनियों ने राजश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी का अभिषेक किया ॥३॥ अनेक रत्नमय सुवर्ण रचित दिव्य सिंहासन पर श्रीरामजी को सीताजी के साथ लक्ष्मीजी के भगवान् जनार्दन के समान, सुवर्ण कलशों से जो अनेक दिव्य रत्नमय थे उनसे मङ्गलमय द्रव्यों से युक्त सभी तीर्थों के पवित्र जल से ॥४-५॥ दूर्वाग्र, तुलसी पत्र, पुष्प तथा चन्दन से युक्त मन्त्रों से पवित्र किये गये शुद्ध जल से प्रख्यात व्रत वाले मुनिगण ॥६॥ चतुर्वेदमय शुभ वैष्णव सूक्त का पाठ करते हुए संसार के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी का शुभ अभिषेक किए ॥७॥ उस अत्यन्त शुद्ध लग्न में, आकाश में देवताओं ने दुन्दुभि बजाया और चारो ओर फूल वर्षाया ॥८॥ श्रीरामचन्द्रजी दिव्यवस्त्रों, भूषणों दिव्य चन्दनानुलेपनों तथा दिव्य अनेक प्रकार के पुष्पों के द्वारा सीताजी के साथ ॥९॥ वेद पारङ्गत मुनियों द्वारा अलंकृत होकर सुशोभित हुए । उस समय लक्ष्मणजी छत्र और चामर धारण किया ॥१०॥ उनके बगल में भरतजी और शत्रुघ्नजी तालवृन्त से हवा किए । श्रीमान् राक्षसेन्द्र विभीषणजी श्रीभगवान् को दर्पण प्रदान किए ॥११॥ वानरेश्वर सुग्रीव ने जल भरे कलश को धारण किया । महातेजस्वी जाम्बवान् मनोहर पुष्प माला प्रदान किए ॥१२॥ बालि के पुत्र अङ्गदजी श्रीहरि को कर्पूर युक्त ताम्बूल प्रदान किए । हनुमानजी

परिवार्य महात्मानं मन्त्रिणः समुपासत । सृष्टिर्जयन्तो विजयः सौराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः ॥१४॥
अकोपोधर्मपालश्च सुमन्त्रो मन्त्रिणः स्मृताः ।
राजानश्च नरव्याघ्रा नानाजनपदेश्वराः ॥१५॥
पौराश्चनैगमा वृद्धा राजानं पर्युपासत। ऋक्षैश्च वानरेन्द्रैश्च मन्त्रिभिः पृथिवीश्वरैः ॥१६॥
राक्षसैर्द्विजमुख्यैश्च किङ्करैश्च समावृतः। परे व्योम्नि यथा लीनो दैवतैः कमलापतिः ॥१७॥
तथा नृपवरः श्रीमान्साकेते शुशुभे तदा । इन्दीवरदलश्यामं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥१८॥
आजानुबाहुं काकुत्स्थं पीतवस्त्रधरं हरिम्। कम्बुग्रीवं महोरस्कं विचित्राभरणैर्युतम् ॥१९॥
देव्या सह समासीनमभिषिक्तं रघूत्तमम् । विमानस्थाः सुरगणा हर्षनिर्भरमानसाः ॥२०॥
तुष्टुवुर्जयशब्देन गन्धर्वाप्सरसां गणाः । अभिषिक्तस्ततो रामो वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः ॥२१॥
शुशुभे सीतया देव्या नारायण इव श्रिया । अतिमर्त्यतया रूपमुपमातीतमुल्बणम् ॥२२॥
दृष्ट्वा तुष्टाव हृष्टात्मा शङ्करो हृष्ठमानसः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सानन्दो गद्गदाकुलः ॥
हर्षयन्सकलान्देवान्मुनीनपि च वानरान् ॥२३॥

महादेव उवाच

नमो मूलप्रकृतये नित्याय परमात्मने । सच्चिदानन्दरूपाय विश्वरूपाय वेधसे ॥२४॥
नमो निरन्तरानन्दकन्दमूलाय विष्णवे। जगत्त्रयकृतानन्दमूर्त्तये दिव्यमूर्त्तये ॥२५॥
नमो ब्रह्मेन्द्रपूज्याय शङ्कराभयदाय च । नमो विष्णुस्वरूपाय सर्वरूप नमो नमः ॥२६॥

दिव्य दीपक और सुषेण ने ध्वज धारण किया ॥१३॥ सभी श्रीभगवान् को घेरकर उनकी सेवा करते थे। सृष्टि, जयन्त, विजय, सौराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन ॥१४॥ अकोप, धर्मपाल, सुमन्त्र ये आठ मन्त्री श्रीभगवान के कहे गये हैं । अनेक जपनदों के स्वामी नरश्रेष्ठ राजागण ॥१५॥ वैदिक नागरिक, वृद्धजन श्रीभगवान् की उपासना कर रहे थे, ऋक्षों, वानरेन्द्रों, मन्त्रियों तथा राजाओं ॥१६॥ राक्षसों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा किङ्करों से परम व्योम में जिस तरह कमलापति देवताओं से घिरे रहते हैं उसी तरह राजश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी साकेत में घिरे हुए सुशोभित हुए । नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले तथा कमल दल के समान विस्तृत नेत्र वाले ॥१७॥ आजानुबाहु पीताम्बर धारण किए हुए शङ्ख के समान कण्ठ वाले, विस्तृत वक्षस्थल वाले, अद्भुत आभरणों से सुशोभित सीताजी के साथ बैठे हुए अभिषिक्त श्रीरामचन्द्र को विमान पर बैठे हुए हर्ष से परिपूर्ण मन वाले देवता ॥१८-२०॥ भगवान् का जय-जयकार करते हुए गन्धर्व तथा अप्सरायें स्तुति कीं । उसके पश्चात् वसिष्ठ आदि महर्षियों के द्वारा अभिषिक्त श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मीजी के साथ नारायण के समान सीताजी के साथ सुशोभित हुए । उनका दिव्य रूप अनुपमेय था ॥२१-२२॥ ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को देखकर प्रसन्न हुए शङ्करजी ने उनकी स्तुति गद्गद होकर तथा हाथ जोड़कर आनन्द पूर्वक की । यह देखकर देवता, मुनि और वानर हर्षित हो गये ॥२३॥ **महादेवजी ने कहा—** मूल प्रकृति स्वरूप नित्य परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप विश्वरूप तथा ब्रह्म श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२४॥ निरन्तर आनन्द रूपी कन्द के मूल स्वरूप, व्यापक, दिव्यमूर्ति तथा तीनों लोकों को आनन्दित करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है॥२५॥ ब्रह्मा तथा इन्द्र के पूज्य, शङ्करजी को अभय प्रदान करने वाले विष्णु स्वरूप तथा सभी रूपों से

उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणे त्रिगुणात्मने। नमोऽस्तु निर्गतोपाधिस्वरूपायमहात्मने॥२७॥
अनया विद्यया देव्या सीतयोपाधिकारिणे। नमः पुम्प्रकृतिभ्यांच युवाभ्यांजगतां कृते॥२८॥
जगन्मातापितृभ्यां च जनन्यै राघवाय च। नमः प्रपञ्चरूपिण्यै निष्प्रपञ्चस्वरूपिणे॥२९॥
नमो ध्यानस्वरूपिण्यै योगिध्येयात्ममूर्तये। परिणामापरीणामरिक्ताभ्यां च नमोनमः॥३०॥
कूटस्थबीजरूपिण्यै सीतायै राघवाय च ।
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुः सीता गौरी भवाञ्छिवः ॥३१॥
सीता स्वयं हि सावित्री भवान्ब्रह्मा चतुर्मुखः ।
सीता शची भवाञ्छक्रः सीता स्वाहाऽनलो भवान् ॥३२॥
सीता संहारिणीदेवी यमरूपधरो भवान् । सीता हि सर्वसम्पत्तिः कुबेरस्त्वं रघूत्तम ! ॥३३॥
सीतादेवी च रुद्राणी भवान्रुद्रोमहाबलः। सीता तुरोहिणीदेवीचन्द्रस्त्वंलोकसौख्यदः॥३४॥
सीता संज्ञा भवान्सूर्यः सीता रात्रिर्दिवा भवान् ।
सीता देवी महाकाली महाकालो भवान्सदा ॥३५॥
स्त्रीलिङ्गं तु त्रिलोकेषु यत्तत्सर्वं हि जानकी ।
पुन्नामलाञ्छितंयत्तुतत्सर्वंहिभवान्प्रभो ! ॥३६॥
सर्वत्र सर्वदेवेश ! सीतां सर्वत्रधारिणि। तदा त्वमपि च त्रातुं तच्छक्तिर्विश्वधारिणी॥३७॥
तस्मात्कोटिगुणंपुण्यंयुवाभ्यांपरिचिह्नितम् । चिह्नितंशिवशक्तिभ्यांचरितंतव शान्तिदम्॥३८॥

सम्पन्न श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है ॥२६॥ जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय करने वाले त्रिगुणात्मक तथा निरुपाधिक स्वरूप वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२७॥ विद्या स्वरूप इस सीता देवी के द्वारा पुरुष तथा प्रकृति स्वरूप आप दोनों के द्वारा संसारियों के लिए उपाधि करने वाले ॥२८॥ जगत् के माता-पिता, सीताजी तथा श्रीरामजी को नमस्कार है । प्रपञ्च स्वरूपिणी जानकीजी तथा प्रपञ्च रहित स्वरूप वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२९॥ ध्यान स्वरूपिणी तथा योगिध्येय मूर्ति परिणाम तथा परिणाम रहित आप दोनों को बारम्बार नमस्कार है । कूटस्थ तथा बीज रूप वाली सीताजी तथा श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है। सीताजी लक्ष्मी हैं और आप विष्णु हैं, सीताजी गौरी हैं और आप शिवस्वरूप हैं, सीताजी शची स्वरूप हैं और आप इन्द्र स्वरूप हैं । स्वयं सीताजी सावित्री देवी हैं और आप चतुर्मुख ब्रह्मा स्वरूप हैं । सीताजी स्वाहा स्वरूप और आप अग्नि स्वरूप हैं ॥३०-३२॥ सीताजी संहारिणी देवी हैं और आप यम रूप धारी हैं । सीताजी सर्वसम्पत्ति हैं और आप कुबेर स्वरूप हैं ॥३३॥ सीताजी रुद्राणी स्वरूप हैं और आप महाबलवान् रुद्र हैं । सीताजी रोहिणी देवी हैं और आप चन्द्रमा स्वरूप संसार को सुख देने वाले हैं॥३४॥ सीताजी संज्ञा देवी हैं और आप सूर्य स्वरूप हैं । सीताजी रात्रि स्वरूप हैं और आप दिन स्वरूप हैं । सीताजी महाकाली हैं तो आप महाकाल हैं ॥३५॥ सभी लोकों में जितने भी स्त्रीलिङ्ग है वह सबकुछ जानकी जी का रूप है और आप जगत् में जितने भी पुलिङ्ग शब्द से कहे जाने वाले हैं वे सबकुछ आप हैं ॥३६॥ हे देवेश ! सर्वत्र सबकुछ आप हैं और सीताजी सर्वत्ररूपिणी हैं । आप भी उसी समय जगत् की रक्षा करने में समर्थ हैं जबकि सीताजी आपकी विश्वधारिणी शक्ति होती हैं ॥३७॥ पुण्य कर्म तब

आवांराम ! जगत्पूज्यौमम पूज्यौसदायुवाम् ।
त्वन्नामजापिनीगौरीत्वन्मन्त्रजपवानहम् ॥३९॥
मुमूर्षोमणिकर्ण्यां तु अर्द्धोदकनिवासिनः । अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम् ॥४०॥
अतस्त्वंजानकीनाथपरंब्रह्माऽसिनिश्चितम् । त्वन्मायामोहितास्सर्वेनत्वांजानन्तितत्त्वतः ॥४१॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्तः शम्भुना रामः प्रसादप्रवणोऽभवत् ।
दिव्यरूपधरः श्रीमानद्भुताद्भुतदर्शनः ॥४२॥
तं तथा रूपमालोक्य नरवानरदेवताः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते तेजसा महदद्भुतम् ॥४३॥
भयाद्वै त्रिदशश्रेष्ठाः प्रणेमुश्चाऽतिभक्तितः । भीता विज्ञाय रामोऽपि नरवानरदेवताः ॥
मायामानुषतां प्राप्य स देवानब्रवीत्पुनः ॥४४॥

रामचन्द्र उवाच

शृणुध्वं देवता यो मां प्रत्यहंस्तोष्यतेबुधः। स्तवेन शम्भुनोक्तेन देवतुल्यो भवेन्नरः ॥४५॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मत्स्वरूपं समश्नुते। रणे जयमवाप्नोति न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥४६॥
भूतवेतालकृत्याभिर्ग्रहैश्चाऽपि न बाध्यते। अपुत्रो लभते पुत्रं पतिं विन्दति कन्यका॥४७॥
दरिद्रः श्रियमाप्नोति सत्त्ववाञ्छीलवान्भवेत्। आत्मतुल्यबलःश्रीमाञ्जायतेनाऽत्रसंशयः ॥४८॥
निर्विघ्नं सर्वकार्येषु सर्वारम्भेषु वै नृणाम् । यं यं कामयते मर्त्यः सुदुर्लभमनोरथम् ॥४९॥

करोड़ों गुणा हो जाता है जबकि वह आप दोनों से सम्बद्ध होता है । शिव तथा शक्ति स्वरूप आप दोनों से सम्बद्ध आपका चरित शान्ति प्रद है ॥३८॥ हे रामजी ! हमदोनों जगत् शून्य हैं और आप दोनों मेरे पूज्य हैं । गौरी आपके नाम का जप करती हैं और मैं आपका मन्त्र जपता हूँ ॥३९॥ मणिकर्णिका में आधे जल में रहने वाले मुमूर्षुओं को मैं ब्रह्म प्रदान करने वाले आपके तारक मन्त्र का उपदेश करता हूँ ॥४०॥ अतएव हे जानकीनाथ ! आप निश्चित रूप से ब्रह्म हैं । आपकी माया से मोहित सभी लोग आपको तत्त्वतः नहीं जानते हैं ॥४१॥ **ईश्वर ने कहा—** शम्भु के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर श्रीरामजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये । वे दिव्य रूप धारण किए हुए अद्भुत रूप वाले थे ॥४२॥ श्रीरामजी को उस रूप को धारण किए हुए देखकर मनुष्य, वानर और देवता उनके अद्भुत तेज के कारण उन्हें देखने में भी समर्थ नहीं थे॥४३॥ भयभीत होने के कारण देव श्रेष्ठ उनको अत्यन्त भक्ति पूर्वक प्रणाम किए । श्रीरामचन्द्रजी भी नर, वानर और देवताओं को भयभीत जानकर माया मनुषत्व को प्राप्तकर फिर देवताओं से कहे ॥४४॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** हे देवताओं ! आपलोग सुनें जो मेरी प्रतिदिन स्तुति शङ्करजी द्वारा की गयी स्तुति से करेगा वह मनुष्य देवता के तुल्य होगा ॥४५॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त करेगा । वह युद्ध में विजय प्राप्त करेगा और कहीं भी पराजित नहीं होगा ॥४६॥ उसको भूत, बेताल, कृत्या और ग्रह करेंगे कभी भी बाधित नहीं होगा । पुत्रहीन पुत्र को तथा कन्या पति को प्राप्त करेगी॥४७॥ दरिद्र धन को प्राप्त करेगा, वह सत्यवादी तथा शील गुण सम्पन्न होगा । वह मेरे सदृश बलवान् और श्रीमान् होगा । इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥४८॥ उसके सभी मनुष्योचित कार्य निर्विघ्न होंगे । वह

षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति स्तवस्याऽस्य प्रसादतः ।
यत्पुण्यंसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुयत्फलम् ॥
तत्फलं कोटिगुणितं स्तवेनाऽनेन लभ्यते ॥५०॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्त्वारामचन्द्रोऽसौविससर्जमहेश्वरम् । ब्रह्मादि त्रिदशान्सर्वान्विससर्जसमागतान् ॥५१॥
अर्चिता मानवाः सर्वे ऋक्षवानरदेवताः। विसृष्टा रामचन्द्रेण प्रीत्या परमया युताः ॥५२॥
इत्थं विसृष्टाः खलु ते च सर्वे स्वं स्वं पदं जग्मुरतीवहृष्टाः ।
परं पठन्तः स्तवमीश्वरोक्तं रामं स्मरन्तो वरविश्वरूपम् ॥५३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे विश्वदर्शनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४३॥

दो सौ चौवालिसवाँ अध्याय

शङ्कर उवाच

अथ रामस्तु वैदेह्या राज्यभोगान्मनोरमान् । बुभुजे वर्षसाहस्रं पालयन्सर्वतो दिशः ॥१॥

मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ जिन-जिन कामनाओं को करेगा ॥४९॥ वह इस स्तोत्र की कृपा से छह मास में सिद्धि प्राप्त कर लेगा । सभी तीर्थों तथा सभी यज्ञों के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल के करोड़ गुणा फल इस स्तोत्र से प्राप्त होगा ॥५०॥ **ईश्वर ने कहा**— यह कहकर रामचन्द्रजी ने शङ्करजी को विदा किया । उन्होंने आये हुए ब्रह्मा आदि सभी देवताओं को भी विदा किया ॥५१॥ उन्होंने सभी मानवों, ऋक्षों तथा वानरों को समादृत किया और परमप्रेम पूर्वक सभी लोगों को विदा किया ॥५२॥ इस तरह विदा किए गये सभी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान पर शङ्करजी के स्तोत्र को प्रेम पूर्वक पढ़ते हुए श्रीरामचन्द्र के श्रेष्ठ रूप को स्मरण करते हुए चले गये ॥५३॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत विश्वरूप दर्शन नामक दो सौ तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४३।।

उत्तम राम चरित के अन्तर्गत गर्भवती सीताजी को जनापवाद के भय से महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में त्याग, काल के साथ प्रतिज्ञा के बाद लक्ष्मणजी द्वारा द्वार की रक्षा में नियुक्त किया जाना, महर्षि दुर्वासा का आगमन, एकान्त में दुर्वासा ऋषि के आगमन की सूचना लक्ष्मणजी द्वारा दिया जाना, लक्ष्मणजी द्वारा दिव्य देह का धारण, श्रीरामचन्द्रजी का लोगों के साथ दिव्यधाम में पदार्पण

शङ्करजी ने कहा— उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के साथ एक हजार वर्ष तक मनोहर राज्य

अन्तःपुरजनास्सर्वे राक्षसस्यगृहेस्थिताम् । गर्हयन्तिस्म वैदेहीं तथा जानपदा जनाः ॥२॥
लोकापवादभीत्या च रामः शत्रुनिवारकः । दर्शयन्मानुषं धर्ममन्तर्वर्त्नीं नृपात्मजाम् ॥३॥
वाल्मीकेराश्रमे पुण्ये गङ्गातीरे महावने । विससर्ज महातेजा गर्भिणीं मुनिसंसदि ॥४॥
सा भर्त्तुः परतन्त्रा हि उवास मुनिवेश्मनि । अर्चिता मुनिपत्नीभिर्वाल्मीकिमुनिरक्षिता ॥५॥
तत्रैवाऽसूत यमलौ नाम्ना कुशलवौ सुतौ । तौ च तत्रैव मुनिना ववृधाते सुसंस्कृतौ ॥६॥

रामोऽपि भ्रातृभिस्सार्द्धं पालयामासमेदिनीम् ।
यमादिगुणसम्पन्नस्सर्वभोगविवर्जितः ॥७॥

अर्चयन्सततं विष्णुमनादिनिधनं हरिम् । ब्रह्मचर्यपरो नित्यं शशास पृथिवीं नृपः ॥८॥
शत्रुघ्नो लवणं हत्वा मथुरां देवनिर्मिताम् । पालयामास धर्मात्मा पुत्राभ्यां सहराघवः ॥९॥
गन्धर्वान्भरतो हत्वा सिन्धोरुभयपार्श्वतः । स्वात्मजौ स्थापयामास तस्मिन्देशे महाबलौ ॥१०॥
पश्चिमे मद्रदेशे तु मद्रान्हत्वा च लक्ष्मणः । स्वसुतौ च महावीर्यावभिषिच्य महाबलः ॥११॥
गत्वा पुनरयोध्यां तु रामपादावुपास्पृशत् । ब्राह्मणस्य मृतं बालं कालधर्ममुपागतम् ॥१२॥

जीवयामास काकुत्स्थः शूद्रं हत्वा चतापसम् ।
ततस्तु गौतमीतीरे नौमषेजनसंसदि ॥१३॥

इयाज वाजिमेधेन राघवः परवीरहा । काञ्चनीं जानकीं कृत्वा तया सार्द्धं महाबलः ॥१४॥
चकार यज्ञान्बहुशो राघवः परमार्थवित् । अयुतान्यश्वमेधानि वाजपेयानि च प्रभुः ॥१५॥

भोगों का भोग किए ॥१॥ अन्तःपुर के सभी लोग तथा जपनद के लोग राक्षस के गृह में रही हुयी वैदेही की निन्दा किए ॥२॥ शत्रुओं को मारने वाले श्रीरामचन्द्रजी लोकापवाद के भय से मनुष्य के धर्म का प्रदर्शन करते हुए गर्भवती सीताजी को ॥३॥ गङ्गा तट पर विद्यमान वाल्मीकि मुनि के पवित्र आश्रम में महान् वन में मुनियों की सभा में महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी गर्भिणी सीता को छोड़ दिए ॥४॥ अपने पति के परतन्त्र रहने वाली सीताजी ने मुनि के आश्रम में निवास किया । मुनियों की पत्नियों ने उनको समादृत किया और महर्षि वाल्मीकि के द्वारा वे रक्षित थीं ॥५॥ वहीं पर उन्होंने जुड़वे कुश तथा लव को जन्म दिया । वे दोनों वहीं पर बढ़े और मुनि के द्वारा संस्कार सम्पन्न हुए ॥६॥ श्रीरामचन्द्र भी भाइयों के साथ धर्म पूर्वक पृथिवी का प्रशासन किए । वे यम आदि नियमों का पालन करते थे और सभी भोगों से पराङ्मुख रहते थे ॥७॥ वे भगवान् सदा अनादि निधन भगवान् विष्णु की पूजा करते थे । सदा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे पृथिवी का पालन करते थे ॥८॥ धर्मात्मा शत्रुघ्नजी लवणासुर को मारकर देवताओं के द्वारा निर्मित मथुरा का अपने दोनों पुत्रों के साथ पालन किए ॥९॥ भरतजी ने सिन्धु नदी के दोनों किनारों के गन्धर्वों को मारकर उस देश में अपने महाबलवान् दोनों पुत्रों को स्थापित कर दिया ॥१०॥ पश्चिम में विद्यमान मद्रदेश के राजा मद्र को मारकर महाबलवान् लक्ष्मणजी अपने महाबलवान् पुत्रों को अभिषिक्त करके ॥११॥ फिर अयोध्या जाकर भगवान् श्रीराम के चरणों का स्पर्श किए । उसी समय ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हो गयी ॥१२॥ फिर श्रीरामचन्द्रजी ने तपस्वी शूद्र को मारकर उसको जीवित कर दिये । उसके पश्चात् गौतमी नदी के तट पर नैमिषारण्य में लोगों की सभा में ॥१३॥ शत्रुवीरों को मारने वाले रामजी

अग्निष्टोमं विश्वजितंगोमेधंवैष्णवंक्रतुम् । चकार विविधान्यज्ञान्परिपूर्णान्सदक्षिणान् ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाल्मीकिः सुमहातपाः । सीतामानीयकाकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥१७॥

वाल्मीकिरुवाच

अपापां मैथिलीं राम त्यक्तुं नाऽर्हसिसुव्रत ! ।
इयंतु विरजाःसाध्वीभास्करस्यप्रभायथा ॥
अनन्या तव काकुत्स्थ कस्मात्त्यक्ता त्वयाऽनघ ! ॥१८॥

राम उवाच

अपापं मैथिलीं ब्रह्मञ्जानामि वचनात्तव । रावणेन हृता साध्वी दण्डके विजने पुरा ॥१९॥
तं हत्वासमरेसीतांशुद्धामग्निमुखागताम् । पुनर्यातोऽस्म्ययोध्यायां सीतामादायधर्मतः ॥२०॥
लोकापवादः सुमहानभूत्पौरजनेषु च । त्यक्ता मया शुभाचारा तद्भयात्तव सन्निधौ ॥२१॥
तस्माल्लोकस्य सन्तुष्ट्यै सीता मम परायण ।
पार्थिवानां महर्षीणां प्रत्ययं कर्तुमर्हति ॥२२॥

महेश्वर उवाच

एवमुक्ता तदा सीता मुनिपार्थिवसंसदि । चकार प्रत्ययं देवी लोकाश्चर्यकरं सती ॥२३॥
दर्शयन्त्यस्य लोकस्यरामस्याऽनन्यतां सती । अब्रवीत्प्राञ्जलिः सीता सर्वेषांजनसंसदि ॥२४॥

सीतोवाच

यथाऽह राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये । तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति ॥२५॥
मनसाकर्मणावाचा यथा रामं समर्चये । तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति ॥२६॥

अश्वमेध याग किए । वे महाबलवान् सुवर्ण की सीताजी को बनवाकर उन्हीं के साथ यज्ञ किए ॥१४॥ परमार्थवेत्ता रामजी बहुत से यज्ञों को किये । उन्होंने दश हजार अश्वमेध तथा वाजपेय यज्ञों को किया॥१५॥ उन्होंने अग्निष्टोम, विश्वजित्, गोमेध आदि अनेक तथा दक्षिणा से परिपूर्ण यज्ञों को किया ॥१६॥ इसी के बीच में वहाँ पर महातपस्वी वाल्मीकि मुनि आये । सीता को लिवाकर वे रामचन्द्रजी से कहे ॥१७॥ **वाल्मीकि महर्षि ने कहा—** हे सुव्रत ! निष्पाप मैथिली नहीं त्यागें यह दोष रहित साध्वी तथा सूर्य की कान्ति के समान आप से अनन्य है, हे अनघ ! आपने इसका त्याग क्यों किया है ॥१८॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! आपके कहने से इसको मैं निष्पाप जानता हूँ । पूर्वकाल में इस साध्वी का रावण ने दण्डकारण्य में अपहरण कर लिया था ॥१९॥ उसको युद्ध में मारकर अग्नि के मुख से निकली हुयी सीता को लेकर मैं अयोध्या गया ॥२०॥ उस समय नागरिकों ने बहुत अधिक लोकापवाद हुयी । उसी के भय के कारण मैंने पवित्र आचरण करने वाली भी इसको आपके समीप त्याग दिया ॥२१॥ अतएव मेरी भक्ति करने वाली यह सीता लोगों के सन्तोष के लिए राजाओं और महर्षियों के बीच विश्वास दिलाये ॥२२॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से कहने पर राजाओं और मुनियों की सभा मैं सीताजी ने आश्चर्यकारी प्रत्यय दिलाया ॥२३॥ राम के प्रति अनन्यता को प्रकाशित करती हुयी सती सीता ने सभी लोगों के बीच हाथ जोड़कर कहा ॥२४॥ **सीताजी ने कहा—** यदि मैं मन से भी राम से भिन्न किसी दूसरे पुरुष का चिन्तन नहीं करती हूँ तो पृथिवी देवी मुझको विवर प्रदान करें ॥२५॥ मन, वाणी और कर्म से यदि मैं राम की ही

यथैव सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं नच। तथा मे धरणी देवी विवरंदातुमर्हति ॥२७॥

महेश्वर उवाच

एवं शपन्त्यां वैदेह्यां धरणी सहसाऽभिनत् ॥२८॥
ततो रत्नमयं पीठं पृष्ठे धृत्वा खगेश्वरः। रसातलादाविरभूद्विस्मयं जनयन्नृणाम्॥२९॥
ततस्तु धरणीदेवीहस्ताभ्यांगृह्यमैथिलीम्। स्वागतेनाऽभिनन्द्यैनामासने संन्यवेशयत्॥३०॥
तामासनगतां दृष्ट्वा दिविदेवगणाभृशम्। पुष्पवृष्टिमविच्छिन्नांदिव्यांसीतामवाऽकिरन् ॥३१॥

साऽपि दिव्याप्सरोभिस्तु पूज्यमाना सनातनी ।
वैनतेयं समारुह्य तस्मान्मार्गाद्दिवं ययौ ॥३२॥

दासीगणैः पूर्वभागो सम्वृता जगदीश्वरी। सम्प्राप परमं धाम योगिगम्यं सनातनम् ॥३३॥
रसातलप्रविष्टां तु तां दृष्ट्वा सर्वमानुषाः। साध्वीसाध्वीतिसीतेयमुच्चैःसर्वे प्रचुक्रुशुः॥३४॥
रामः शोकसमाविष्टः संगृह्य तनयावुभौ। मुनिभिः पार्थिवेन्द्रैश्च साकेतं प्रविवेश ह॥३५॥
अथ कालेन महता मातरः संशितव्रताः। कालधर्मं समापन्ना भर्त्रा स्वर्गं प्रपेदिरे ॥३६॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। चकार राज्यं धर्मेण राघवः संशितव्रतः॥३७॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य राघवस्यनिवेशनम्। कालस्तापसरूपेण सम्प्राप्तोवाक्यमब्रवीत्॥३८॥

काल उवाच

रामराममहाबाहो ! धात्रा सम्प्रेषितोऽस्म्यहम् ।
यद्ब्रवीमि रघुश्रेष्ठ ! तच्छृणुष्व महामते ! ॥३९॥

अर्चा करती हूँ तो भूदेवी मुझे विवर प्रदान करें ॥२६॥ यदि मैंने यह सत्य कहा है कि राम से भिन्न मैं किसी दूसरे पुरुष को नहीं जानती हूँ तो भूदेवी मुझे विवर प्रदान करें ॥२७॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से सीताजी के शपथ करते ही पृथिवी फट गयी ॥२८॥ उसी समय रत्नमय सिंहासन को अपने पीठ पर धारण करके गरुड़ लोगों को आश्चर्यित करते हुए प्रकट हुए ॥२९॥ उसके बाद भूदेवी ने अपने दोनों हाथों से सीताजी को पकड़कर उनका स्वागत करके अभिनन्दन किया और उसी आसन पर उनको बैठा दिया॥३०॥ उनको आसन पर बैठी हुयी देखकर आकाश में देवतागण बहुत अधिक सीताजी के ऊपर पुष्पों की वृष्टि किए ॥३१॥ वह भी सनातनी देवी अप्सराओं से पूजित होती हुयी गरुड़ पर बैठकर उसी मार्ग से वैकुण्ठ चली गयीं ॥३२॥ पूर्वभाग में दक्षिणों से घिरी हुयी जगदीश्वरी योगिगम्य परम धाम में चली गयीं ॥३३॥ उनको रसातल में प्रवेश की हुयी देखकर सभी मनुष्य जोर से कहने लगे कि सीताजी साध्वी हैं ॥३४॥ शोक सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी अपने दोनों पुत्रों को स्वीकार करके मुनियों तथा राजओं के साकेत पुरी में चले गये ॥३५॥ उसके बहुत दिन बाद प्रशंसित व्रत वाली माताओं की मृत्यु हो गयी और वे स्वर्ग में अपने पति को प्राप्त कर लीं ॥३६॥ प्रशंसित व्रत वाले श्रीरामचन्द्रजी ग्यारह हजार वर्षों तक धर्म पूर्वक राज्य किए ॥३७॥ उसके पश्चात् कुछ समय बाद श्रीरामचन्द्रजी के गृह में तपस्वी के वेष में काल आया और उसने कहा ॥३८॥ **काल ने कहा—** हे महाबाहो श्रीराम ! ब्रह्माजी ने मुझे आपके पास भेजा है । हे महामते! जो मैं कहता हूँ उसे आप सुनें ॥३९॥ हम दोनों को एकान्त में बात करना चाहिए । उसके बीच में जो

द्वन्द्वमेवहि कार्यं स्यादावयो:परिभाषितम् । तदन्तरे प्रविष्टो यस्य वध्योहि भविष्यति ॥४०॥

महेश्वर उवाच

तथेति च प्रतिश्रुत्य रामो राजीवलोचनः । द्वाःस्थं कृत्वा तुसौमित्रिं कालेनसमभाषत ॥
वैवस्वतोऽब्रवीद्वाक्यं रामं दशरथात्मजम् ॥४१॥

काल उवाच

शृणु राम ! यथावृत्तं ममाऽऽगमनकारणम् ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥४२॥
वसाऽस्मिन्मानुषे लोके हत्वा राक्षसपुङ्गवान् ।
एवमुक्तः सुरगणैरवतीर्णोऽसि भूतले ॥४३॥
तदयं समयः प्राप्तः स्वर्लोकं गमितुं त्वया ।
सनाथाहि सुराःसर्वे भवन्त्वद्यत्वयाऽनघ ! ॥४४॥

महेश्वर उवाच

एवमस्त्विति काकुत्स्थो रामःप्राह महाभुजः ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्रदुर्वासास्तुमहातपाः ॥
राजद्वारमुपागम्य लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥४५॥

दुर्वासा उवाच

मां निवेदय काकुत्स्थं शीघ्रं गत्वा नृपात्मज ! ॥४६॥

महेश्वर उवाच

तमब्रवील्लक्ष्मणस्तु असांनिध्यमितिद्विज ! । ततः क्रोधसमाविष्टः प्राह तं मुनिसत्तमः ॥४७॥

दुर्वासा उवाच

शापं दास्यामि काकुत्स्थं रामं न यदि दर्शयेः ॥४८॥

कोई भी आयेगा वह आपका वध्य होगा ॥४०॥ **महेश्वर ने कहा—** ठीक है इस तरह की प्रतिज्ञा करके राजीव लोचन श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी को अपना द्वारपाल बनाकर काल से बातचित करने लगे । वैवस्वत् ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥४१॥ **काल ने कहा—** हे राम ! मेरे आने का जो कारण है उसे आप सुनें। आपने राक्षस श्रेष्ठों को मारकर ग्यारह हजार वर्ष इस मनुष्य लोक में निवास किया । इस तरह से देव समूह के द्वारा कहे जाने पर आप अवतीर्ण हुए ॥४२-४३॥ अतएव आपके अपने लोक में जाने का समय हो गया है । हे नाथ ! आज आपके द्वारा सभी देवता सनाथ हो जायँ ॥४४॥ **महेश्वर ने कहा—** महान् भुजाओं वाले श्रीराम ने कहा ठीक है ऐसा ही होगा । उसी समय वहाँ पर महातपस्वी दुर्वासा मुनि आये। वे राजद्वार पर आकर लक्ष्मणजी से कहे ॥४५॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा—** हे नृपात्मज ! शीघ्र श्रीराम को मेरे आने की सूचना दो ॥४६॥ **महेश्वर ने कहा—** लक्ष्मणजी ने महर्षि से कहा हे द्विज ! इस समय वे एकान्त में हैं । उसके बाद क्रुद्ध होकर मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥४७॥ दुर्वासा महर्षि बोले यदि तुम मुझे काकुत्स्थ राम से नहीं मिलाये तो मैं उनको शाप दे दूँगा ॥४८॥ **महेश्वर ने कहा—** उस शाप के भय

महेश्वर उवाच

तस्माच्छापभयाद्विप्रं राघवाय न्यवेदयत् । तत्रैवाऽन्तर्दधे कालः सर्वभूतभयावहः ॥४९॥
पूजयामास तं प्राप्तमृषिं दुर्वाससं नृपः । अग्रजस्य प्रतिज्ञां तु विज्ञाय रघुसत्तमः ॥५०॥
तत्याज मानुषं रूपं लक्ष्मणः सरयूजले। विसृज्य मानुषं रूपं प्रविवेश स्वकां तनुम्॥५१॥
फणासहस्रसंयुक्तं कोटीन्दुसमवर्चसम् । दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥५२॥
नागकन्यासहस्रैस्तु सम्वृतः समलङ्कृतः । विमानं दिव्यमारुह्य प्रययौ वैष्णवं पदम् ॥५३॥
लक्ष्मणस्यगतिंसम्यग्विदित्वारघुसत्तमः । स्वयमप्यथकाकुत्स्थः स्वर्गं गन्तुमभीप्सितः ॥५४॥

अभिषिच्याऽथ काकुत्स्थः स्वात्मजौ च कुशीलवौ ।
विभज्य रथनागाश्वं सधनं प्रददौ तयोः ॥५५॥
कुशवत्यां कुशं तं च शरवत्यां लवं तथा ।
स्थापयामास धर्मेण राज्ये स्वं रघुसत्तमः ॥५६॥

अभिप्रायं तु विज्ञाय रामस्य विदितात्मनः । आजग्मुर्वानरा:सर्वेराक्षसाः सुमहाबलाः ॥५७॥

विभीषणोऽथ सुग्रीवो जाम्बवान्मारुतात्मजः ।
नीलो नलःसुषेणश्चनिषादाधिपतिर्गुहः ॥५८॥

अभिषिच्य सुतौ वीरौ शत्रुघ्नश्च महामनाः । सर्व एते समाजग्मुरयोध्यां रामपालिताम् ॥५९॥
ते प्रणम्य महात्मानमूचुः प्राञ्जलयस्तथा ॥६०॥

वानरप्रभृतयऊचुः

स्वर्लोकं गन्तुमुद्युक्तं ज्ञात्वा त्वां रघुसत्तम ! ।
आगता स्मोवयंसर्वेतवाऽनुगमनं प्रति ॥६१॥

से लक्ष्मणजी ने मुनि के आगमन की सूचना श्रीरामजी को दे दी । सभी जीवों के लिए भयङ्कर काल वहीं पर अन्तर्धान हो गया ॥४९॥ राजा ने आये हुए ऋषि की पूजा की । अपने बड़े भाई की प्रतिज्ञा को जानकर लक्ष्मणजी ॥५०॥ सरयू के जल में जाकर अपने मनुष्य रूप का परित्याग कर दिया । वे मानव शरीर को त्यागकर अपने शरीर में प्रवेश कर गये ॥५१॥ हजारो फणाओं से युक्त करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति वाले दिव्य माला को धारण किए हुए और दिव्य चन्दन को धारण किए हुए वे ॥५२॥ हजारों नाग कन्याओं से घिरे हुए, दिव्य विमान से भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥५३॥ लक्ष्मणजी की गति को अच्छी तरह जानकर रघुश्रेष्ठ श्रीराम भी स्वयं स्वर्ग जाना चाहे ॥५४॥ श्रीरामजी भी अपने दोनों पुत्रों कुश तथा लव को अभिषिक्त करके बाँटकर रथ हाथी घोड़े और धन दे दिए ॥५५॥ कुशवती में कुश को तथा स्रावस्ती में लव को अपने राज्य को धर्म पूर्वक राज्य पर स्थापित किए ॥५६॥ श्रीरामचन्द्रजी के अभिप्राय को सभी मनुष्य, राक्षस, महाबली राक्षस, विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान् हनुमानजी, नल, नील, सुषेण और निषदाधिपति ॥५७-५८॥ अपने वीर पुत्रों को अभिषिक्त करके शत्रुघ्नजी इत्यादि भी श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा पालित अयोध्या में आये ॥५९॥ वे श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनसे कहे॥६०॥
वानर आदि ने कहा— हे रघुश्रेष्ठ ! आपको स्वर्गलोक में जाने के लिए तैयार जानकर हमलोग आपका

न शक्ताः स्मः क्षणं राम जीवितुं त्वां विना प्रभो ! ।
तस्मात्त्वया विशालाक्ष ! गच्छामस्त्रिदशालायम् ॥६२॥

महेश्वर उवाच

तैरेवमुक्तः काकुत्स्थो बाढमित्यब्रवीत्ततः । अथोवाच महातेजा राक्षसेन्द्रं विभीषणम्॥६३॥

राम उवाच

राज्यं प्रशाधि धर्मेण मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावतिष्ठति मेदिनी ॥
तावद्रमस्व सुप्रीतः काले मम पदं व्रज ॥६४॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्त्वाऽथ स काकुत्स्थः स्वार्चा विष्णु सनातनम् ।
श्रीरङ्गशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकुकुलदैवतम् ॥६५॥

सम्प्रीत्या प्रददौ तस्मै रामो राजीवलोचनः । हनुमन्तमथोवाच राघवः शत्रुसूदनः॥६६॥

राम उवाच

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोकेहरीश्वर !। तावद्रमस्व मेदिन्यां काले मां व्रज सुव्रत ! ॥६७॥

महेश्वर उवाच

तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो जाम्बवन्तमथाऽब्रवीत् ॥६८॥

राम उवाच

द्वापरे समनुप्राप्ते यदूनामन्वये पुनः। भूभारस्य विनाशाय समुत्पत्स्ये त्वहं भुवि॥६९॥
करिष्ये तत्र संग्रामं त्वया भल्लूकसत्तम ! ॥७०॥

महेश्वर उवाच

तमेवमुक्त्वाकाकुत्स्थःसर्वास्तानृक्षवानरान् । उवाचवाचागच्छध्वमितिरामोमहाबलः ॥७१॥

अनुगमन करने के लिए आये हैं ॥६१॥ हे प्रभो ! आपके बिना हमलोग क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकते हैं । अतएव हे बड़े-बड़े नेत्रों वाले आपके साथ हमलोग भी स्वर्ग जायेंगे ॥६२॥ **महेश्वर ने कहा—** उन सबों के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा ठीक है । इसके बाद वे विभीषणजी से कहे॥६३॥ **श्रीरामजी बोले—** तुम धैर्य पूर्वक राज्य का प्रशासन करो मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ मत बनाओ । जब तक सूर्य चन्द्रमा और पृथिवी हैं तब तक तुम राज्य करो और समय आने पर मेरे लोक में आना ॥६४॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से कहकर श्रीरामचन्द्रजी अपनी सनातन अर्चा मूर्ति उनको प्रदान किए । श्रीरङ्गनाथ की सुन्दर मूर्ति जो इक्ष्वाकु वंश की कुलदैवत थी ॥६५॥ राजीव लोचन श्रीरामचन्द्रजी ने उस मूर्ति को प्रेम पूर्वक प्रदान करके उसके बाद श्रीहनुमान् जी से कहा ॥६६॥ **रामजी ने कहा—** हे हरीश्वर! जब तक संसार में मेरी कथा होती रहे तब तक आप पृथिवी पर रहें समय आने पर मेरे लोक में आ जायँ॥६७॥ **महेश्वर ने कहा—** उनको इस प्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने जाम्बवान् से कहा ॥६८॥ **श्रीरामजी ने कहा—** द्वापर युग के आने पर यदुवंश में मैं पृथिवी का भार उतारने के लिए पुनः अवतीर्ण

मन्त्रिणो नैगमाश्चैव भरतः कैकयीसुतः। राघवस्यानुगमने निश्चितास्ते समाययुः ॥७२॥
ततः शुक्लाम्बरधरो ब्रह्मचारी ययौ परम्। कुशान्गृहीत्वा पाणिभ्यामाचम्य प्रययावथ ॥७३॥
रामस्य दक्षिणेपार्श्वे पद्महस्ता रमा गता। तथैव धरणी देवी दक्षिणेतरगा तथा ॥७४॥
वेदाः साङ्गाःपुराणानिसेतिहासानिसर्वतः। ॐकारोथवषट्कारः सावित्रीलोकपावनी ॥७५॥

अस्त्रशस्त्राणि च तदा धनुराद्यानि पार्वति ! ।
अनुजग्मुस्तथा रामं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥७६॥

भरतश्चैव शत्रुघ्नः सर्वे पुरनिवासिनः। सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुजग्मुः सहानुगाः ॥७७॥
मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च किङ्करा नैगमास्तथा। वानराश्चैव ऋक्षाश्च सुग्रीवसहितास्तदा ॥७८॥
सपुत्रदाराः काकुत्स्थमन्वगच्छन्महामतिम्। पशवः पक्षिणश्चैवसर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥७९॥
अनुजग्मुर्महात्मानं समीपस्थानरोत्तमाः। ये च पश्यन्तिकाकुत्स्थंस्वपथानुगतं प्रभुम् ॥८०॥
ते तथाऽनुगता रामं निवर्त्तन्ते न केचन। अथ त्रियोजनं गत्वा नदींपश्चान्मुखींस्थिताम् ॥८१॥
सरयू पुण्यसलिलां प्रविवेश सहानुगः। ततः पितामहो ब्रह्मा सर्वदेवगणावृतः ॥८२॥
तुष्टाव रघुशार्दूलमृषिभिः सार्द्धमक्षरैः। अब्रवीत्तत्र काकुत्स्थं प्रविष्टं सरयूजले ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

आगच्छ विष्णो ! भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद ! ।
भ्रातृभिस्सहदेवाभैः प्रविशस्व निजां तनुम् ॥८४॥

होऊँगाा ॥६९॥ भालुश्रेष्ठ ! उस अवतार में मैं आप से संग्राम करूँगा ॥७०॥ **महेश्वर ने कहा—** उनको इस प्रकार से कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने सम्पूर्ण वानरों एवं भालुओं से कहा कि आपलोग आइये ॥७१॥ मन्त्रीगण, वैदिक, कैकेयीजी के पुत्र भरतजी, श्रीरामचन्द्रजी का अनुगमन करने के लिए निश्चित करके वहाँ आये ॥७२॥ उसके बाद श्वेत वस्त्र धारण किए हुए ब्रह्मचारी श्रीरामचन्द्रजी हाथ में कुश लेकर आचमन करके चल पड़े ॥७३॥ श्रीरामजी के दाहिन भाग में लक्ष्मीजी चलीं उसी तरह से भूदेवी भी उनके बाये दायें चल रही थीं ॥७४॥ साङ्गवेद, पुराण तथा सभी इतिहास ओङ्कार तथा वष्ट्कार तथा लोकों को पवित्र करने वाली सावित्री देवी ॥७५॥ हे पार्वति ! सभी अस्त्र-शस्त्र तथा धनुष आदि सबके सब पुरुष का शरीर धारण करके श्रीरामचन्द्रजी का अनुगमन किए ॥७६॥ भरतजी, शत्रुघ्नजी सभी नागरवासी अपने पुत्र, पत्नी तथा अनुचरों के साथ श्रीरामचन्द्रजी का अनुगमन किए ॥७७॥ मन्त्रिगण, भृत्यवर्ग, किङ्कर, नैगम, वानर, ऋक्ष, सुग्रीव तथा सभी अपने पुत्रों तथा पत्नी के साथ महामति श्रीरामचन्द्रजी के पीछे चले। पशुगण, पक्षीगण तथा सभी स्थावर एवं जङ्गम जीव तथा समीप में रहने वाले श्रेष्ठ मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी के पीछे चले। जो लोग भगवान् रामजी को अपने मार्ग में देखते थे श्रीरामजी का अनुगमन करने लगते थे ॥७८-८०॥ वे सभी श्रीराम का अनुगमन करने वाले लौटते नहीं थे। वे तीन योजन पश्चिमाभि मुखी नदी के तट पर जाकर ॥८१॥ पुण्य सलिला सरयू में अपने अनुचरों के साथ श्रीरामजी प्रवेश किए। उस समय सभी देवताओं के साथ ब्रह्माजी ॥८२॥ ऋषियों के साथ श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति किए। सरयू जल में प्रवेश किए श्रीरामचन्द्रजी से **ब्रह्माजी ने कहा—** हे मानद ! भगवन् विष्णों ! आप भाग्यवशात् प्राप्त हुए

वैष्णवीन्तां महातेजां देवाकारांसनातनीम् । त्वं हि लोकगतिर्देव ! नत्वां केचित्तुजानते ॥८५॥
त्वामचिन्त्यं महात्मानमक्षरं सर्वसंग्रहम्। यमिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविशस्व भोः ॥८६॥

महेश्वर उवाच

तस्मिन्सूर्यकराकीर्णे पुष्पवृष्टिनिपातिते । उत्सृज्य मानुषं रूपं स्वां तनुम्प्रविवेश ह ॥८७॥
अंशाभ्यां शङ्खचक्राभ्यां शत्रुघ्नभरतावुभौ । प्रपेदाते महात्मानौ दिव्यतेजस्समन्वितौ ॥८८॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गपद्महस्तश्चतुर्भुजः । दिव्याभरणसम्पन्नो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥८९॥
दिव्यपीताम्बरधरः पद्मपत्रनिभेक्षणः । युवा कुमारः सौम्याङ्गः कोमलावयवोज्ज्वलः॥९०॥
सुस्निग्धनीलकुटिलकुन्तलः शुभलक्षणः । नवदूर्वाङ्कुरश्यामः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥९१॥
देवीभ्यां सहितः श्रीमान्विमानमधिरुह्य च। तस्मिन्सिंहासने दिव्ये मूलेकल्पतरोःप्रभुः ॥९२॥
निषसाद महातेजाः सर्वदेवैरभिष्टुतः । राघवानुगता ये च ऋक्षवानरमानुषाः ॥९३॥
स्पृष्ट्वैव सरयूतोयं सुखेन त्यक्तजीविताः। रामप्रसादात्ते सर्वे दिव्यरूपधराः शुभाः ॥९४॥
दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यमङ्गलवर्चसः। आरुरुहुर्विमानं तदसङ्ख्यतत्र देहिनः ॥९५॥
सर्वैःपरिवृतः श्रीमान्रामो राजीवलोचनः। पूजितः सुरसिद्धौघैर्मुनिभिस्तु महात्मभिः ॥९६॥
आययौ शाश्वतं दिव्यमक्षरं स्वपदं विभुः । यः पठेद्रामचरितं श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ॥९७॥

हैं आइये । देवताओं के समान कान्ति वाले आप अपने शरीर में प्रवेश करें ॥८३-८४॥ महातेज सम्पन्न देवता के समान आकार वाले उस शरीर को कोई नहीं जानता है । हे देव ! आप ही सांसारिक जीवों के प्राप्य हैं आपको कोई नहीं जानता है ॥८५॥ सबों के संग्रह स्वरूप अक्षर पुरुष तथा अचिन्त्य आप जिस शरीर में चाहे उसमें प्रवेश कर जायँ ॥८६॥ **महेश्वर ने कहा—** सूर्य की ज्योति से परिपूर्ण तथा जिस पर फूलों की वर्षा कर दी गयी थी, उस मनुष्य के शरीर को त्यागकर अपने शरीर में प्रवेश गये ॥८७॥ शङ्ख और चक्र के अंशों वाले महात्मा भरत और शत्रुघ्न दोनों दिव्य तेज से सम्पन्न होकर शङ्ख और चक्र को प्राप्त कर लिए ॥८८॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म हाथ में धारण किए हुए चतुर्भुज, दिव्यालङ्कारों से सुशोभित दिव्य चन्दन का लेप लगाये हुए ॥८९॥ दिव्य पीताम्बर, धारण किए हुए, पद्म दल के समान नेत्र वाले, युवा कुमार तथा सौम्य अङ्ग वाले, कोमल अवयवों से सुशोभित ॥९०॥ चिकने घुंघराले केशों वाले शुभ लक्षणों से सम्पन्न नवीन दूर्वा के समान श्याम वर्ण वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले ॥९१॥ श्रीदेवी और भूदेवी के साथ विमान पर बैठकर उस सिंहासन पर विद्यमान दिव्य कल्पतरु के मूल में ॥९२॥ महातेजस्वी सभी देवताओं से स्तुति किए जाते हुए बैठ गये । श्रीरामचन्द्रजी का अनुगमन करने वाले जितने ऋक्ष, वानर और मनुष्य थे ॥९३॥ सरयू के जल को स्पर्श करके ही सुख पूर्वक अपने जीवन को त्यागकर श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से वे सभी शुभ दिव्य रूप धारण करके ॥९४॥ दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किए हुए दिव्य मङ्गलमय कान्ति से सम्पन्न उस विमान पर असंख्य शरीर धारण किए हुए॥९५॥ चढ़ गये । सबों से घिरे हुए ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीरामजी सभी देवताओं और सिद्धों के द्वारा पूजित होकर मुनियों तथा महात्माओं ॥९६॥ के साथ अपने शाश्वत दिव्य एवं अक्षर अपने धाम में आये । जो कोई श्रीरामचरित के एक श्लोक अथवा आधे श्लोक को ॥९७॥ पढ़ता अथवा सुनता है अथवा भक्ति पूर्वक स्मरण करता

शृणुयाद्वा तथा भक्तया स्मरेद्वा शुभदर्शने ! ।
कोटिजन्मार्जितात्पापाज्ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतात् ॥९८॥
विमुक्तो वैष्णवं लोकं पुत्रदारैश्चबान्धवैः । समाप्नुयाद्योगगम्यमनायासेन वै नरः॥९९॥
एतत्ते कथितंदेवि ! रामस्यचरितंमहत् ।
धन्योऽस्म्यहंत्वया देवि ! रामचन्द्रस्यकीर्त्तनात् ॥
किमन्यच्छ्रोतुकामाऽसि तद्ब्रवीमि वरानने ! ॥१००॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे श्रीरामचरितकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४४॥

दो सौ पैंतालिसवाँ अध्याय

श्रीपार्वत्युवाच

रघुनाथस्य चरितं साधूक्तं हि त्वया विभो ! ।
श्रुत्वा धन्याऽस्मि देवेश ! त्वत्प्रसादान्महेश्वर ! ॥१॥

है हे पार्वति ! वह करोड़ों जन्मों में अर्जित ज्ञात अथवा अज्ञात पापों से ॥९८॥ मुक्त होकर पुत्र, पत्नी और बान्धवों के साथ विष्णु लोक में जाता है । वह बिना किसी प्रयास के ही योगियों को प्राप्त होने वाले परम्पद को प्राप्त कर लेता है ॥९९॥ हे देवि ! इस महान् रामचरित का वर्णन मैंने किया । हे देवि ! रामचन्द्रजी का वर्णन करके मैं धन्य हो गया हूँ । अब दूसरी कौन सी बात तुम सुनना चाहती हो उसे मैं तुमको बतलाऊँ ॥१००॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीरामचरित वर्णन नामक दो सौ चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४४।।

श्रीकृष्णावतार की कथा के प्रसङ्ग में कंस, जरासन्ध आदि राक्षसों के उत्पात से भयभीत पृथिवी का ब्रह्माजी के पास जाना, देवताओं के साथ ब्रह्माजी का भगवान् विष्णु के समीप जाकर उनकी प्रार्थना करना, पृथिवी के भार को दूर करने के लिए भगवान् विष्णु का आश्वासन देना, कारावास में विद्यमान वसुदेव के गृह में भगवान् कृष्ण का प्रादुर्भाव, भगवान् कृष्ण को वृन्दावन में लाया जाना, कंस के अत्याचार का बर्णन, पूतना आदि का मारा जाना, श्रीकृष्ण के द्वारा अनेक दिव्य लीला का प्रदर्शन और कंस का वध

श्रीपार्वतीजी ने कहा— हे विभो ! आपने श्रीरामचन्द्रजी के चरित का अच्छी तरह से वर्णन किया। हे देवेश ! हे महेश्वर ! उसको सुनकर मैं धन्य हो गयी ॥१॥ वसुदेवजी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण के महान्